VISHVA–JYOTI

REGD NO. PB-HSP-01
(1.1.2024 TO 31.12.2026)
R.N. No. 1/57

ISSN 0505-7523

मासिक पत्रिका (JOURNAL)

विश्वज्योति

(PEER REVIEWED JOURNAL)

(अभिनिर्देशित मासिक पत्रिका)

73वां वर्ष, अंक 7, अक्टूबर, 2024

संचालक–सम्पादक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

सह–सम्पादक
प्रो.(डॉ.) प्रेम लाल शर्मा

प्रकाशन स्थान
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान
साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

ISSN 0505-7523

प्रकाशक

विश्वेश्वरानन्द–वैदिक–शोध–संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

(अभिनिर्देशित पत्रिका)

(PEER REVIEWED JOURNAL)

प्रकाशन–परामर्शदात्री समिति :

डॉ. दर्शन सिंह निर्वैर, आजीवन सदस्य, वि.वै.शोध संस्थान कार्यकारिणी समिति, साधु आश्रम, होश्यारपुर।

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द, आदरी प्रोफैसर, (वि. वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), 1581, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़।

प्रो. जगदीश प्रसाद सेमवाल, आदरी प्रोफैसर, (वि. वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), एफ–13, पंचशील इन्कलेव, जीरकपुर (मोहाली) पंजाब।

प्रो.(सुश्री) रेणू कपिला, कोठी नं. बी–7/309, डी.सी. लिंक रोड, होश्यारपुर (पंजाब)।

प्रो. रघवीर सिंह, आदरी प्रोफैसर, वी.वी.आर.आई., साधु आश्रम, होश्यारपुर(पंजाब)।

डॉ. जयप्रकाश शर्मा, 1486, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49–बी, चण्डीगढ़।

प्रि. उमेश चन्द्र शर्मा, पी.ई.एस(1), रिटा., शिवशक्ति नगर, होश्यारपुर।

डॉ. नरसिंह चरणपंडा, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, डायरैक्टर, IQAC, सैंटरल विश्वविद्यालय ओड़िशा, कोरापुट, ओड़िशा।

प्रो. (डॉ.) ऋतुबाला, वी.वी.बी.आई. एस. एण्ड, आई.एस. (पं.वि.पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर।

प्रो. ललित प्रसाद गौड़, संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र(हरियाणा)।

डॉ. रविन्द्र कुमार बरमोला, वी.वी.बी.आई. एस. एण्ड, आई.एस. (पं.वि.पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर।

दूरभाष : कार्यालय : 01882 – 223582, 223606, मो. 7973153462

संचालक (निवास) : 01882–244750

E-mail : vvrinstitute@gmail.com ,

vvr_institute@yahoo.co.in

Website : www.vvrinstitute.com

मुद्रक : विश्वेश्वरानन्द वैदिक–शोध–संस्थान प्रैस, होश्यारपुर (पंजाब)

प्रकाशन विषयक विशिष्ट नियम

१ विश्वज्योति अभिनिर्देशित पत्रिका **(Peer Reviewed Journal)** विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित की जाती है।

२ पत्रिका **(JOURNAL)** प्रत्येक मास की २८ तारीख को (अनिवार्य रूप से) प्रकाशित होती है।

३ इसका प्रकाशन वर्ष अप्रैल मास से प्रारम्भ होता है।

४ इसके अप्रैल-मई एवं जून-जुलाई के दो वार्षिक विशेषांक प्रकाशित होते हैं।

५ भविष्य में जो भी प्राध्यापक अथवा शोध-छात्र पदोन्नति या यत्र-तत्र नियुक्तिहेतु विश्वज्योति में लेख को छपवाना चाहते हैं, वे कम से कम ५ पृष्ठ का अथवा अधिक से अधिक ७ पृष्ठ तक का सटिप्पण अपना लेख भेजें, टिप्पण नीचे या लेख के अन्त में दे सकते हैं। ऐसे लेखों पर ही (Peer Reviewed Journal) का ISSN नम्बर छापा जायेगा।

विशेष: स्वतन्त्र रूप से लेख भेजने वाले विद्वान् लेखकों के लिए यह बन्धन नहीं है। वे स्वतन्त्रता से अपनी रचना, कविता एवं नाटक भेज सकते हैं।

६ संस्थान के पैटर्न सदस्य, आजीवन-सदस्य तथा वार्षिक-सदस्यों को विश्वज्योति नि:शुल्क नियमत: भेजी जाती है।

७ अन्य संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं के साथ इसका विनियम भी किया जाता है।

८ विश्वज्योति सम्बन्धी पत्रव्यवहार संचालक अथवा सम्पादक के पते पर किया जा सकता है।

९ किसी संस्था, पुस्तकालय एवं विद्वान् के आग्रह पर हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार को ध्यान में रखते हुए उनको विश्वज्योति नि:शुल्क भी भेजी जा सकती है।

१० विश्वज्योति में समालोचनार्थ समालोच्य पुस्तक या ग्रन्थ की दो प्रतियाँ भेजनी अनिवार्य हैं। जिस अंक में समालोचना प्रकाशित की जाती है, वह अंक लेखक को नि:शुल्क भेजा जाता है।

११ विश्वज्योति का मूल्य निम्न प्रकार से है- भारत में एक प्रति का मूल्य १० रु: विदेश में ३ डालर। भारत में वार्षिक सदस्यता १०० रु: तथा विदेश में वार्षिक सदस्यता- ३० डालर। भारत में आजीवन सदस्यता १२०० रु: तथा विदेश में ३०० डालर है। विशेषाङ्क २ भाग भारत में ५० रु: तथा विदेश में १२ डालर हैं।

विशेष:- (क) लेखक को पारिश्रमिक देने का नियम नहीं है।

(ख) प्रकाशित लेख की एक प्रति लेखक को भेजी जाती है।

सम्पादक

भारत में एक प्रति का मूल्य : 10 रुपये.
विदेश में एक प्रति का मूल्य : 3 डालर.

विषय-सूची

लेखक	विषय		पृष्ठांक
डॉ. कृष्ण कुमार यादव 'कनक'	भारतीय ज्ञान परंपरा : महाभारत से 'अभिशापित द्विधाग्रस्त : द्वापर' कृति तक	लेख	7
डॉ. मृगांक मलासी	भारतीय ज्ञानपरम्परा में शब्दार्थ-सम्बन्ध	लेख	11
श्री. आशीष कुमार	योगवासिष्ठ में लोक कल्याण की भावना	लेख	20
श्री. प्रदीप कुमार	महाभारत में शुभाशुभ कर्म और फल विवेचन	लेख	24
डॉ. दीपेन्द्र किशोर आर्य एवं प्रो. अशोक कुमार	जनार्दनहेगड़े द्वारा संस्कृतलघु कथा साहित्य संवर्द्धन में योगदान	लेख	29
डॉ. शैलजा आरोड़ा	रामचरित मानस में माता कैकेयी की करुण कहानी	लेख	35
डॉ. विद्यानन्द 'ब्रह्मचारी'	ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रथम गवर्नर जनरल लार्ड वारेन हेस्टिंग्स का गीता प्रेम	लेख	38
श्री अनिल कुमार	पुरुषार्थचतुष्टय में धर्म विवेचन	लेख	41
श्री सौरभ	प्राण-एक शास्त्रीय विवेचन (उपनिषदों के विशिष्ट सन्दर्भ में)	लेख	46
	पुस्तक-समीक्षा		52
	संस्थान-समाचार		53
	पुण्य-पृष्ठ		54

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ७३ } होश्यारपुर, आश्विन, २०८१; अक्टूबर, २०२४ { संख्या - ७

रथे अक्षेष्वृषभस्य वाजे,
वाते पर्जन्ये वरुणास्य शुष्मे।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान,
सा न ऐतु वर्चसा संविदाना।। (शौ. ६.३८.३)

रथ में, पासों में, बैल के बल में, वायु में, मेघ में, वरुण के गम्भीरनाद में जिस (स्वाभाविक शक्ति का) प्रकाश हो रहा है, (वही मेरे अन्दर भी हो)। जिस (स्वाभाविक शक्तिरूपिणी) भगवती ने इन्द्र (तक) को प्रकट कर रखा है, वह तेज-पुँज को साथ लिए हुए हमें भी आकर कृतार्थ करे।

(वेदसार - विश्वबन्धुः)

सुख-दुःखे समे कृत्वा लाभाऽलाभौ जयाऽजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापाम् अवाप्स्यसि।।

(गीता, २.३९)

(हे अर्जुन), सुख और दुःख, लाभ और हानि एवं जीत और हार को (पहले) एक-समान समझने लग जाओ, (और) फिर, लड़ने के लिए उद्यत हो जाओ। ऐसा (करने से) तुम्हें पाप नहीं लगेगा।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७३, सं. ७
अक्टूबर ,२०२४

भारतीय ज्ञान परंपरा : महाभारत से 'अभिशापित द्विधाग्रस्त : द्वापर' कृति तक

- कृष्ण कुमार यादव 'कनक'

क्रमश :-

'धर्मो रक्षति रक्षित:' शीर्षक से युधिष्ठिर के माध्यम से कवि ने धर्म की धारणा को स्पष्ट करते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि प्रत्येक व्यक्ति परिस्थिति में धर्म भिन्न होता है। यानी कि जिस देश, काल, वातावरण में जो सर्वोतम कर्तव्य है, वही धर्म है। अर्थात् जिसे धारण किया जाना अपरिहार्य हो वही धर्म है और जो व्यक्ति धर्म की रक्षा करता है तो वह धर्म उस व्यकित की भी रक्षा करता है। कवि लिखता है-

इतिहास के निर्मम वक्ष पर
उगी हुई शब्द हीन प्रश्नाकुलता
न विराटकाय गदा की धमक से
हल होती है
न गांडीव की अचूक
शब्दभेदी टंकार से
समाधान कब दे पाता है
पलायन का सुविधा भोगी छद्म पथ ?
उसे चाहिए
आवेग रहित आस्था का जीवन्त स्वर
वह स्वर जो
मानव का साथी 'धैर्य' कहे
जो कहे प्रवासी का साथी
'विद्या' केवल
जो जननी को धरती से भी 'भारी' माने
जो कहे पिता को
'नभ' से भी ऊँचा हर पल
जो मन की गति को कहे
पवन से अधिक 'क्षिप्र'
जो भार्या को 'घर का साथी'
यमद्वारपथी का साथी 'दान' मानता हो
'सुख' मिले 'शील' से कहे
अभिमान, द्वेष, ईर्ष्या
हिंसा को शत्रु कहे
जानते मृत्यु को अपरिहार्य
फिर भी अमृत्व-चाह मन में
हर मानव के, यह अचरज है
भीतर के द्वंद हारना ही
हो जिसके लिए 'क्षमा' सच्ची
जो देव, अतिथि, सेवक, आत्मा
जननी और जनक के पोषण को
जीवन माने

जो कहे धर्म का प्राण 'सत्य'।[१५]

'प्रश्नों की शूली' शीर्षक से कवि ने अर्जुन के कथन के माध्यम से नारी चेतना का ऐसा मनोविश्लेषणात्मक चित्र खींचा है जिसमें संपूर्ण कृति की वर्तमान उपादेयता का प्रतिफलन प्रस्तुत कर दिया है। 'पंच कन्याओं में' परिणित कुंती तथा पांचाली, गर्भिणी उत्तरा के साथ ही गांधारी की भी उस विवशता को परिलक्षित किया है जिसके कारण एक स्त्री उसके परिजनों द्वारा जिस अनुपयुक्त वर को ब्याह दी जाती है, उसे उसी के साथ आंख पर पट्टी बांध कर पूरा जीवन व्यतीत करना होता है। यानी कि एक स्त्री को अपनी इच्छा के अनुसार अपना जीवन साथी तक चुनने का अधिकार नहीं होता। कवि लिखता है-

सोचता हूँ
क्यों लुटी हैं नारियाँ
देकर चुनौती सर्वदा ही?
धातु निर्मित मछलियां की आंख हों
या लाख के घर
चक्रव्यू गढ़े गए
षड्यंत्र के
या मृत की बर्बर परीक्षा
कुछ अजन्मे मनुष्य सुतों पर की गई हो
वाण वर्षा
कौरवी मद की सभा हो
या कि हो कुरुक्षेत्र रण का
बाण या पांसे
पुरुष के हाथ में थे
दांव पर नारी लगी थी
नारियों की नियत में तो
नग्न होने की विवशता
या रुदन
या हरण
या होना विभाजित ही रहा है।[१६]

'कानीन पीड़ा' शीर्षक से कवि ने एक जैसे एक ऐसे बालक की वेदना को स्वर दिया है जो कानीन है। यानी कि कुमारी कन्या के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण सूर्य पुत्र होने के बाद भी जीवन भर सूत पुत्र कहा गया। अर्जुन से भी बलशाली योद्धा होने के बाद भी उसे सामाजिक अस्वीकार्यता का दंश झेलना पड़ा। वह जीवन भर अपनी और अपने जैसे असंख्य सूत पुत्रों की अस्मिता की खोज में ही भटका और अंत में इसी वेदना को लेकर संसार से विदा भी हो गया। 'कानीन पीड़ा' शीर्षक से कर्ण की वेदना की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं-

वे अदृश्य हाथ
निष्कपट निषादों के
समर्पित शिष्यत्व से
अंगूठा दान में लेने वाले
क्रीत और निर्मम गुरुत्व के थे
वे अदृश्य हाथ
युद्ध के उन्मादी क्षणों में
निरंतर बाण फेंक कर भी

प्रतिपक्ष की कल्याण-कामना करने वाले
विभाजित क्षत्रियत्व के थे
वे अदृश्य हाथ
हर शब्द भेदी प्रतिभा को
स्वयंवरों के लक्ष्यभेदी मंचों से
धकेलने वाले
कीलित संदर्भों के थे
और
वे अदृश्य हाथ थे
नारी को संपति मानने वाले
जुए की फड़ पर बैठे हुए
धर्म की विकलांग आस्था के
मैं सिर्फ एक झुका हुआ धनुष हूँ
क्योंकि
मेरे सूर्य-सत्य से
मेरी कानीन पीड़ा
बहुत बड़ी थी
बहुत बड़ी थीं मेरी अवैध व्यथाएं
बहुत बड़ी थीं
मेरी कुंठित वेदनाएं....[१७]

'निष्काम कर्म : गतिशील धर्म' नामक शीर्षक से इस संपूर्ण कृति की अंतिम रचना के रूप में कवि ने भगवान् श्रीकृष्ण के कथन को रखा है, जिसमें कृष्ण के माध्यम से समाजवादी व्यवस्था, साम्यवादी धारणा तथा समन्वयवादी दृष्टिकोण से मानव मात्र के उत्थान की कल्पना की सृष्टि की गई है। साथ ही कवि ने गीता ज्ञान के माध्यम से कृष्ण की वर्तमान समय में समीचीनता की भी स्थापना की है। कृष्ण के शब्दों में कवि लिखता है-

मेरे ही यह परिवारीजन
हो गए क्रूर
आदर्श हीन दु:शील
धूर्त, मद्यप अविवेकी
कुविचारी
ये सब प्रभास में
आपस में
लड़-लड़कर मरने लगे
क्रूर पशुओं जैसे
शुभ ही है यह
बस
इसी ध्वंस पर
नूतन सृष्टि जन्म लेगी
होगा नूतन निर्माण भव्य
विहंसेंगी मूल्यों की खेती
हरियायेंगे आदर्श नए
सत् फिर से स्थापित होगा
इस पावन भारत भूमि पर
हो निर्बाध और
स्वच्छंद
निष्कंटक होगी
मानवता
इस हेतु अगर
आना हो तो
मैं आऊंगा

फिर..... फिर

फिर.........फिर

फिर..............फिर।[१८]

इस प्रकार संपूर्ण कृति में व्यास, भीष्म, विदुर, शांतनु, गंगा, द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र, गांधारी, पांडु, भीम, अभिमन्यु, अश्वत्थामा, शकुनि, युयुत्सु, दुर्योधन, एकलव्य, अंबा, शिखंडी, दु:शासन, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, विकर्ण, उत्तरा, कुंती, पांचाली, गांधारी, कृपाचार्य आदि सभी प्रमुख पात्रों के अभिकथनों के माध्यम से कवि ने वर्तमान मानवीय मूल्यों तथा मानवीय संवेदनाओं को अपने विस्तृत कल्पनाकाश में मौलिक स्वच्छंदता के साथ उतारकर भावी पीढ़ी, पर बहुमूल्य उपकार किया है।

निष्कर्ष :-

भारतीय ज्ञान परंपरा का आधारभूत स्तंभ माना जाने वाला ग्रंथ महाभारत प्रत्येक युग तथा परिस्थिति में उतना ही मूल्यवान, सार्थक, उपयोगी तथा समीचीन है। इस ग्रंथ में वर्णित कोई भी आख्यायिका हो अथवा 'अभिशापित द्विधाग्रस्त : द्वापर' कृति का कोई भी पात्र, स्थल अथवा युग, सर्वत्र ही भारतीय सांस्कृति व मानवीय मूल्यों के संरक्षण वाला सतत् प्रवाही ज्ञान युगों-युगों से निरंतर इसी प्रकार प्रवाहित होता रहा है और भी अनादिकाल तक होता रहेगा।

---

१५. अभिशापित द्विधाग्रस्त : द्वापर, डॉ. रामसेनही लाल शर्मा 'यायावर' पृष्ठ संख्या - ७०-७१, निखिल पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, ३७, शिराव कृपा, विष्णु कॉलोनी, शाहगंज, आगरा- २८२०१०, प्रथम संस्करण - २०२३

१६. अभिशापित द्विधाग्रस्त : द्वापर, डॉ. रामसेनही लाल शर्मा 'यायावर' पृष्ठ संख्या - ७८-७९, निखिल पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, ३७, शिराव कृपा, विष्णु कॉलोनी, शाहगंज, आगरा- २८२०१०, प्रथम संस्करण - २०२३

१७. अभिशापित द्विधाग्रस्त : द्वापर, डॉ. रामसेनही लाल शर्मा 'यायावर' पृष्ठ संख्या - ७२-७३, निखिल पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, ३७ए शिराव कृपा, विष्णु कॉलोनी, शाहगंज, आगरा- २८२०१०, प्रथम संस्करण - २०२३

१८. अभिशापित द्विधाग्रस्त : द्वापर, डॉ. रामसेनही लाल शर्मा 'यायावर' पृष्ठ संख्या - १४७-१४८, निखिल पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, ३७ए शिराव कृपा, विष्णु कॉलोनी, शाहगंज, आगरा- २८२०१०, प्रथम संस्करण - २०२३

- प्रबंधक-सचिव, प्रज्ञा हिन्दी सेवार्थ संस्थान ट्रस्ट,

'कनक-निकुंज', ठार मुरली नगर, गुँदाऊ, लाइन पार, फिरोजाबाद-283203

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

भारतीय ज्ञानपरम्परा में शब्दार्थ-सम्बन्ध

- मृगांक मलासी

आधुनिक भाषाविज्ञान वैखरी वाणी से प्रारम्भ होता है। 'विखर' अर्थात् शरीर के आधार पर उत्पन्न होने वाली वाणी को 'वैखरी' वाणी कहते हैं। पाश्चात्य भाषाविज्ञान भाषाशास्त्र के अनुशीलन-परिशीलन के प्रसंग में ध्वनियों के उच्चारण और श्रवण की प्रक्रिया का विश्लेषण करने के लिए उच्चारणस्थान कण्ठ से ओष्ठ तक एवं श्रवण-स्थान कर्ण-कुहर से मस्तिष्क तक के हमारे शरीर के विभिन्न अवयवों के संचालन का गहरा अध्ययन करके ध्वनियों का स्वरूप-गुण-निर्धारण और वर्गीकरण करता है। भौतिक विज्ञान के आधुनिक साधनों की सहायता से भाषाशास्त्र के अन्तर्गत ध्वनियों के अध्ययन का विषय वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में विकसित होकर ध्वनि-विज्ञान (फोनेटिक्स) के रूप में अपना विशिष्ट स्वरूप निर्धारित कर चुका है। उसी प्रकार आधुनिक भाषाविज्ञान में शब्द प्रयोग और वाक्य-विन्यास के वैज्ञानिक अध्ययन का विषय रचना-विज्ञान (मॉरफोलॉजी) और अर्थाभिव्यक्ति का विषय अर्थ-विज्ञान (सेमान्टिक्स) के रूप में निरूपित हो चुका है। पाश्चात्य भाषाविज्ञान ने शरीर-विज्ञान (फिजियोलॉजी), समाजविज्ञान (सोशियोलॉजी), मनोविज्ञान (साइकोलॉजी), नृतत्त्व विज्ञान (एन्थ्रोपोलॉजी) आदि सम्बद्ध विषयों के आश्रय से बड़ी गहराई में जाकर भाषाशास्त्र के विविध अवयवों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। किन्तु भाषा केवल उच्चारण मात्र ही नहीं है। एक ओर तो वह सूक्ष्म अन्तर्जगत् के अदृश्य विचारों की संवेद्य सहायिका है, दूसरी ओर वह स्थूल बहिर्जगत् के दृश्य आचारों की नियामिका भी है, अत: भाषा का घनिष्ठ सम्बन्ध विचार, उच्चार और आचार, तीनों से है। अस्तु, भाषा चिन्तन पर बात की जाए तो भारतीय चिन्तनपरम्परा में भाषाचिन्तन को आरम्भ से ही एक केन्द्रीय महत्त्व का स्थान प्राप्त रहा है; यह तथ्य यहाँ की ज्ञानोर्वरा भूमि में पल्लवित और विकसित हुई विभिन्न शास्त्रीय पद्धतियों के सामान्य अध्ययन से भी सङ्केतित हो जाता है। भाषा का विवेचन यहाँ के तत्त्ववेत्ता विवेचकों ने दो रूपों में किया है - तत्त्वमीमांसा के रूप में और ज्ञानमीमांसा के रूप में। तत्त्वमीमांसा के रूप में भाषा की तात्त्विकता का परीक्षण किया गया। इस परीक्षण में दो परस्पर अत्यन्त विरोधी

विचारधाराएँ आकारित होकर प्रस्तुत हुईं। इनमें एक विचारधारा भाषा की वस्तुसत्ता को न केवल स्वीकारती थी अपितु उसे एकमात्र सत्ता मानने का आग्रह भी करती थी। इसके विपरीत दूसरी विचारधारा भाषा की वस्तुसत्ता का निराकरण करती थी और युक्ति के साथ आग्रह करती थी कि भाषा मात्र कल्पना व आरोपण है; वस्तुसत् से न उसका कुछ लेना है और नही कुछ देना है। रुचिकर बात यह थी कि इन दोनों ही विचारधाराओं के प्रस्तोता व प्रसारक अपनी तत्त्वमीमांसा में अद्वैतवाद के पोषक थे। इनमें से प्रथम का प्रतिनिधित्व वैयाकरण करते थे जबकि दूसरे विचार के पुरोधा नित्यविज्ञानवादी वेदान्ती और क्षणिकविज्ञानवादी बौद्ध थे।

भाषा मानव जीवन के लिए वह महनीय तत्त्व है जिसने भाव और विचार के विनिमय की शक्ति प्रदान कर मानव समुदाय को समाज के रूप में संघटित किया, चिन्तन और अभिव्यक्ति की क्षमता देकर उसकी सांस्कृतिक चेतना का विकास किया। शब्द और अर्थ के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय मे विचारकों की परस्पर विरोधी मान्यताएँ रही हैं। एक ओर जहाँ स्वत: प्रकाश्य शब्द–ब्रह्म की अखण्ड, अनादि, अनन्त सत्ता मानकर सम्पूर्ण अर्थात्मा सृष्टि को उसका विवर्त माना गया, वहाँ दूसरी ओर शब्द और अर्थ की परस्पर स्वतन्त्र सत्ता मानकर, उनके बीच के सम्बन्ध को अनित्य, सामयिक और लोक–व्यवहार से आरोपित मात्र माना गया है तथा भाषा को अर्थ का अनुगामी और बोध के संवहन में सहायक भर माना गया है। भाषा तात्त्विक चिन्तन के मूल में विचारकों की दार्शनिक मान्यताएँ निहित हैं। यह सर्वमान्य तथ्य है कि न तो अर्थहीन भाषा की सत्ता होती है और न भाषा के बिना अर्थ की अभिव्यक्ति सम्भव होती है। इसी क्रम में यह प्रश्न उपस्थित होता है कि उक्त शब्द से किसका ग्रहण किया जाए अथवा संकेतित अर्थ को किस प्रकार समझा जाए? भारतीय ज्ञान परम्परा में शाब्दबोध का विवेचन विशेष रूप से व्याकरण, न्याय तथा मीमांसा इन तीन शास्त्रों में किया गया है।

शब्दविशेष के साथ अर्थविशेष के सम्बन्ध की समस्या पर विचार करते हुए यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि कोई विशेष शब्द और उससे अभिहित होने वाला अर्थ सनातन नहीं है। नये–नये शब्द और अर्थ निर्मित होते रहते हैं। प्रश्न उठता है कि किसी विशेष शब्द के साथ विशेष अर्थ का सम्बन्ध कैसे जुड़ता है ? ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखने वाले और संसार के समस्त क्रिया–कलाप का उसे ही मूलकारण मानने वाले मनीषियों ने शब्दविशेष में अर्थविशेष के बोध की शक्ति को ईश्वर प्रदत्त माना है। किन्तु आधुनिक भाषाविज्ञान के विचारक उस शक्ति को लोक व्यवहार से निर्मित मानते हैं । शब्द और अर्थ की पूर्वापर स्थिति के सम्बन्ध पर भी विद्वानों में वैमत्य रहा है। एक ओर जहाँ शब्द को ब्रह्म

मानकर अर्थ को उसका विवर्त माना गया वहीं दूसरी ओर अर्थ की पूर्वसत्ता मानकर शब्द को उसे प्रकाशित करने का साधन भर माना गया है। एक विद्वान् ने यह आक्षेप किया है कि शब्द को अर्थ का पूर्ववर्त्ती मानना गाड़ी को घोड़े के आगे रखने जैसा है।[1] व्यावहारिक पक्ष से विचार करें तो भाषा को प्रयोग करने वाला पहले मन में किसी अर्थ को ग्रहण करता है और उस अर्थ को भाषिक रूप देकर व्यक्त करता है। भाषा का प्रयोग वह

अर्थ के प्रतीक रूप में करता है। जब भाषा नहीं बनी थी तब संकेत के माध्यम से अर्थाभिव्यक्ति की जाती थी। आज भी मूक व्यक्ति संकेत से ही अर्थ व्यक्त करता है। इसके विपरीत श्रोता पहले शब्द को सुनता है तत्पश्चात् संकेतित अर्थ को ग्रहण करता है। इस प्रकार वक्ता की दृष्टि से अर्थ पहले आता है और श्रोता की दृष्टि से शब्द। किन्तु शब्दार्थ का यह पौर्वापर्य क्रम भाषा के उच्चरित स्वरूप और उससे बोध होने वाले अर्थ की दृष्टि से है।

शब्दार्थ स्वरूप निर्धारण के क्रम में मूल प्रश्न यह है कि उस अर्थ की सत्ता मानव के बोधरूप में मानी जानी चाहिए या लोकसिद्ध वस्तु के रूप में? दूसरे शब्दों में, शब्दार्थ प्रत्ययरूप है या वस्तुरूप? इसी प्रश्न को इस रूप में प्रस्तुत किया गया है कि शब्द से जिस अर्थ का ग्रहण होता है वह जाति या सामान्य रूप होता है या व्यक्तिरूप ? दोनों पक्षों में कुछ युक्तियाँ हैं। यदि यह कहें कि शब्द केवल प्रत्ययरूप जाति या सामान्य का बोध कराता है तो 'गाय मर गयी' जैसे भाषिक प्रयोग का क्या औचित्य होगा? गो की प्रत्ययगत जाति का मरना तो सम्भव ही नहीं है। पर यहाँ यह समस्या भी आती है कि गो शब्द से किसी विशिष्ट व्यक्ति का ही बोध नहीं होता वह शब्द रूप, गुण, क्रिया आदि में परस्पर भिन्न असंख्य व्यक्तियों का सामान्य रूप में ही बोध कराता है। समस्या की इस जटिलता के कारण ही वैयाकरणों, दार्शनिकों, मनोवैज्ञानिकों तथा भाषावैज्ञानिकों के अनेक ऊहापोह के बाद भी इस समस्या का सर्वसम्मत समाधान नहीं हो पाया है।

साहित्य-शास्त्र का शब्दार्थ-विवेचन भी एतद्विषयक उक्त वैचारिक परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य में ही प्रारम्भ होता है। संकेतग्रह-सिद्धान्त की पूर्वपीठिका इन्हीं दर्शन-ग्रन्थों में विद्यमान है। आचार्य मम्मट ने भी काव्यप्रकाश में शब्द-शक्ति विवेचन के प्रसंग में इसका विवरण दिया है। संकेतग्रह को समझने से पूर्व हमें शब्द-अर्थ के सम्बन्ध को जानना आवश्यक है। विभिन्न दर्शनों के परिप्रेक्ष्य में हम इसे निम्नलिखित प्रकार से समझ सकते हैं -

वैयाकरणों के अनुसार शब्दार्थ सम्बन्ध -

अर्थ बोध कराना ही शब्द की उपयोगिता है। शब्द से अर्थ की प्रतीति होती है इस विषय में सभी विद्वानों में मतैक्य है। नैयायिकों को छोड़कर वैयाकरणों, मीमांसकों एवं साहित्यशास्त्रियों तथा

अन्य विचारकों ने शब्द के साथ अर्थ के सम्बन्ध को नित्य माना है। पतञ्जलि ने सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे की व्याख्या में यह स्पष्ट किया है कि पाणिनि तथा कात्यायन शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्ध मानते हैं।[2] आचार्य भर्तृहरि ने शब्द तथा अर्थ के सम्बन्ध को स्वभाव सिद्ध तथा अनादि कहा है।[3]

इसी प्रकार वाक्यपदीयम् के व्याख्याकार हरिवृषभ ने भी शब्द की नित्यता का प्रतिपादन करते हुए शब्द और अर्थ का स्वाभाविक सम्बन्ध स्वीकार किया है। उनके अनुसार यदि शब्द का वस्तु के साथ स्वाभाविक सम्बन्ध न होता तो शब्द का उच्चारण करने पर वस्तु का ज्ञान नहीं होता। परन्तु अनुभव में देखा जाता है कि शब्द से वस्तु का ज्ञान होता है। अत: शब्द व अर्थ का सम्बन्ध स्वाभाविक है।

वैयाकरणों का यह आशय है कि शब्द अनादिकाल से ही अर्थों के प्रत्यायक रहे हैं, अत: उनका सम्बन्ध भी अनादि है। यह कहना कठिन है कि कब किसने तत्तत् शब्दों का तत्तत् अर्थों में सङ्केत निश्चित किया था, परन्तु परम्परा से अनादिकाल से ही शब्द अर्थों का बोध कराते रहे हैं। अत: यह मानना युक्तियुक्त है कि शब्द व अर्थ का यह सम्बन्ध भी अनादि है।

मीमांसकों के अनुसार शब्दार्थ सम्बन्ध –

मीमांसा के आदि आचार्य जैमिनी के अनुसार शब्द का अर्थ के साथ औत्पत्तिक अर्थात् स्वाभाविक सम्बन्ध है। शब्द लक्षण से भाव (सत्ता) को कहता है। शब्द और अर्थ का सम्बन्ध अवियुक्त अर्थात् नित्य व स्वाभाविक है। उत्पन्न हुए शब्द और अर्थ का सम्बन्ध पश्चाद्वर्ती सम्बन्ध नहीं है।

आचार्य युधिष्ठिर मीमांसक इस सूत्र पर अपना विवरण लिखते हुए कहते हैं– 'शबरस्वामी और उसके मतानुयायी इस सूत्र से केवल शब्द और अर्थ के सम्बन्ध की नित्यता का प्रतिपादन करते हैं। ये लोग वेद का प्रकाशक और जगत् का निर्माता किसी पुरुष विशेष ईश्वर, महाभूत या अपरनाम ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार नहीं करते हैं। ये लोग वेद को अपौरुषेय व अनादिसिद्ध और जगत् को भी अनादिसिद्ध मानते हैं'। प्रस्तुत सूत्र में आचार्य जैमिनी ने शब्दार्थ सम्बन्ध की नित्यता में बादरायण के मत को स्ववचन के रूप में पुष्टि के लिए उद्धृत किया है। बादरायण 'ब्रह्मसूत्र' के रचयिता हैं, वे शास्त्र की योनि (कारण) ब्रह्म को मानते हैं। अत: सूत्रकार जैमिनी को शब्दार्थ सम्बन्ध की नित्यता वेद को ईश्वरीय उपदेश मानकर ही दर्शाना अभीष्ट है। अत: द्योतित होता है कि मीमांसक भी वैयाकरणों की भाँति शब्दार्थ का नित्य सम्बन्ध मानते हैं।

नैयायिकों के अनुसार शब्दार्थ सम्बन्ध –

नैयायिक शब्दों को अनित्य मानते हैं। शब्द को अनित्य मानने का कारण शब्द एवं अर्थ में नित्य सम्बन्ध भी नहीं होता। न्यायदर्शन में गौतम ने

कहा है कि यदि शब्द का अर्थ के साथ सम्बन्ध वास्तविक है तो अग्नि कहते ही मुँह जल जाना चाहिए, चाकू कहते ही मुँह कट जाना चाहिए, परन्तु ऐसा देखा नहीं जाता अत: यह ज्ञान होता है कि दोनों में सम्बन्ध नहीं है।[8] शब्दार्थ सम्बन्ध पर जयन्तभट्ट कहते हैं कि 'हम शब्द और अर्थ का न संयोग सम्बन्ध मानते हैं, न कार्य-कारण, न निमित्त-नैमित्तिक, न आश्रय-आश्रयिभाव। तो क्या शब्द और अर्थ में सम्बन्ध नहीं है ? सम्बन्ध है, क्योंकि शब्द से अर्थ का नियमित ज्ञान होता है, जिस प्रकार धूम से अग्नि का ज्ञान। तब क्या अविनाभाव सम्बन्ध है। अविनाभाव सम्बन्ध मानने से शब्द अनुमान प्रमाण हो जाएगा। अत: शब्द और अर्थ में वाच्य-वाचक नियम का निर्धारक समय (संकेत) है, वही सम्बन्ध है'।

बौद्धों के अनुसार शब्दार्थ सम्बन्ध -

बौद्ध विचारकों ने शब्दार्थ के स्वरूप के सम्बन्ध में वैयाकरणों के जात्यादि चतुष्टयवाद, पूर्वमीमांसकों के जातिवाद एवं नैयायिकों के तद्वान् अर्थात् जातिविशिष्ट- व्यक्तिवाद के सिद्धान्त को अस्वीकार कर एक नवीन सिद्धान्त की स्थापना की जो 'अपोहवाद' या 'तद्भिन्न-भिन्नवाद' के नाम से प्रसिद्ध है। बौद्धों के शब्दार्थ स्वरूप विषयक चिन्तन का उनके तत्त्व-चिन्तन अर्थात् सृष्टि सम्बन्धी दार्शनिक विश्वास से प्रभावित होना स्वाभाविक ही था। दिङ्नाग आदि बौद्ध विचारकों ने अपने तत्त्वचिन्तन के निष्कर्ष के रूप में यह सिद्धान्त स्थापित किया है कि सृष्टि के बाह्यपदार्थों की नित्य सत्ता नहीं है। अत: प्रत्यक्षज्ञान का कोई विषय नहीं है। शाब्दबोध के स्वरूप पर विचार करते हुए उन्होंने यह मान्यता व्यक्त की है कि शब्द को सुनकर उससे सम्बद्ध वस्तुओं का बोध होता है पर उन बोधगम्य वस्तुओं की तात्त्विक सत्ता नहीं है। किसी वस्तु का स्वरूप क्षणमात्र भी स्थायी नहीं है। ऐसे ही सतत विनाशशील वस्तुओं का बोध शब्द से होता है। प्रत्यक्ष दृश्य जगत् में पदार्थों को असत्य सिद्ध करने के लिए बौद्धों ने यह उदाहरण दिया है कि दृष्टिदोष के कारण यदि किसी को दो चन्द्रमा दिखायी दें तो इससे दो चन्द्रमाओं की तात्त्विक सत्ता सिद्ध नहीं हो जाती। उसी प्रकार अज्ञानवश बाह्य पदार्थों का जो प्रत्यक्ष होता है, उससे बाह्य पदार्थों की तात्त्विक सत्ता सिद्ध नहीं की जा सकती है।[9]

शब्दार्थ संप्रत्यय में संकेतग्रह की अनिवार्यता -

संकेतग्रह को समझने से पूर्व संकेत को समझना आवश्यक है। सामान्य व्यवहार में जब कोई व्यक्ति किसी विषय अथवा वस्तु के विषय में अन्य व्यक्ति को परामर्श देता है अथवा उस वस्तु के सम्बन्ध में श्रोता को विशेष ज्ञान कराता है तो वह परामर्श या प्रज्ञप्ति ही संकेत है। संकेत अर्थात् इशारा या इंगित करना। शास्त्रों में संकेत शब्द पर विशेष रूप से विचार किया गया है।

सर्वप्रथम गौतम प्रणीत 'न्यायसूत्र' तथा

कणादकृत 'वैशेषिकसूत्र' में संकेत के लिए समय शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। न्यायदर्शनकार ने शब्द और अर्थ के सम्बन्ध पर विचार करते हुए लिखा है कि शब्द और अर्थ का यह सम्बन्ध सामयिक अर्थात् सांकेतिक है। समय पद के अर्थ के विषय में 'न्यायसूत्र' के भाष्यकार 'वात्स्यायन' ने लिखा है कि इस शब्द से यह अर्थ कहा जाता है कि इस प्रकार सृष्टि के प्रारम्भ में ईश्वर के द्वारा किया हुआ शब्द और अर्थ का वाच्य-वाचकभावरूप नियम समय है। उस सम्बन्ध का ज्ञान होने पर शब्द से अर्थ का निश्चित ज्ञान होता है। यदि शब्द और अर्थ के वाच्य-वाचकरूप सम्बन्ध का भी ज्ञान न हो तो शब्द के सुनने पर शब्द के अर्थ का ज्ञान नहीं होगा।[६]

सूत्रकार अन्य हेतु देकर इसकी पुष्टि करते हुए कहते हैं कि शब्द अनेकार्थक होते हैं, विभिन्न जातियों में भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। इसलिए कहा गया है जातिविशेषे चानियमात् अर्थात् विशेष जाति प्राणियों में नियम न होने से।[७] इसका भावार्थ यह है कि आर्य जाति के लोग 'यव' शब्द का दीर्घशूक (लम्बे डण्डे वाला) अर्थ में प्रयोग करते हैं और म्लेच्छ जाति के लोग उसका प्रियंगु (ककुनी) अर्थ करते हैं। अब यदि शब्द और अर्थ का स्वाभाविक सम्बन्ध माना जाए तो शब्द का एक अर्थ में ही प्रयोग होना चाहिए। उससे अन्य अर्थ की प्रतीति नहीं होनी चाहिये, जबकि देखा जाता है कि एक ही शब्द देश-काल आदि के भेद से भिन्न-भिन्न अर्थ देता है।

इस समस्या का एकमात्र समाधान है, शब्दार्थ ग्रहण में सङ्केतग्रह की अनिवार्यता। क्योंकि संकेत व्यक्तियों की इच्छानुसार निर्धारित होता है और इच्छाएँ नियमित नहीं होती। इसी बात को भाष्यकार वात्स्यायन ने स्पष्ट करते हुए कहा है कि शब्द और अर्थ का समय (संकेत) से किया हुआ सम्बन्ध ही शब्द से अर्थ का निश्चित ज्ञान कराता है, न प्राप्तिरूप स्वाभाविक सम्बन्ध। क्योंकि ऋषि, आर्य तथा म्लेच्छ अपनी अपनी इच्छानुसार ही अर्थज्ञान के लिए शब्दों का प्रयोग करते हैं। यदि स्वाभाविक नित्यप्राप्ति रूप सम्बन्ध से ही शब्द अर्थ का ज्ञान कराये तो अपनी इच्छानुसार ऋषि, आर्य तथा म्लेच्छ आदि शब्दों का प्रयोग नहीं करेंगे।[८] इस प्रकार नैयायिकों द्वारा शब्दार्थ ज्ञान में संकेतग्रह की अनिवार्यता को स्वीकार किया जाता है।

महाभाष्यकार पतञ्जलि ने कहा है – पद और पदार्थ का इतरेतराध्यासरूप संकेत है। यह जो शब्द है वह अर्थ है, जो अर्थ है वह शब्द है।[९] विश्वनाथ पञ्चानन भट्टाचार्य द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तमुक्तावली में भी कहा गया है- शाब्दबोध के प्रति पदज्ञान करण (कारण), पदार्थज्ञान द्वार (व्यापार), शाब्दबोध फल तथा शक्तिज्ञान सहायक है।[१०] अर्थात् शक्तिज्ञान से जन्य पदार्थ की उपस्थिति के द्वारा शाब्दबोध रूपी फल उत्पन्न होता है। इस प्रकार पदजन्यपदार्थ का स्मरण

शाब्दबोध में व्यापार है। तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वम् व्यापारत्वम्। अर्थात् जो किसी से जन्य हो तथा उससे उत्पन्न होने वाले का जनक हो उसे व्यापार कहते हैं। पदार्थ स्मरण पदज्ञान से जन्य है और पदज्ञान से जन्य शाब्दबोध का जनक भी है। अर्थात् पदज्ञान के बाद संकेतग्रह के द्वारा ही पदार्थ का ज्ञान होता है। इसप्रकार पदज्ञान के बाद जो शाब्दबोध होगा, उसमें पदार्थ स्मरण अवान्तर व्यापार है। यहाँ महाभाष्यकार के इस मत की पुष्टि होती है कि संकेत स्मृत्यात्मक होता है। शाब्दबोध की प्रक्रिया को इसके द्वारा स्पष्ट समझा जा सकता है- 'छुरी से फल काटता है'। इस वाक्य में छुरी करण तथा फल का कटना कार्य (फल) है। लेकिन छुरी से फल स्वयं नहीं कटता तदर्थ प्रयास किया जाता है। छुरी को फल के ऊपर रखकर बल के साथ दबाने से छुरी फल को काटती है। यही प्रयास अवान्तर व्यापार है। शाब्दबोध स्थल में यह उक्त क्रम रहता है – करण, व्यापार और फल।

शाब्दबोध की उपर्युक्त प्रक्रिया में 'पदार्थ धी:' सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंश है। पदज्ञान के पश्चात् प्रयास करने पर भी 'पदार्थ धी:' उसी व्यक्ति को होगी जो प्रत्येक पद के अर्थ को जानता हो। किस पद का क्या अर्थ है, उसका पूर्व परिचय श्रोता को होना चाहिए, अन्यथा पदज्ञान होने पर भी पदों के अर्थों का स्मरण उसे नहीं रहेगा। यथा- जो व्यक्ति संस्कृत भाषा न जानता हो उसे यदि कहा जाए 'स्वर्गकामो यजेत' तो वह पदों को तो सुनेगा, पदज्ञान होगा किन्तु वह पदज्ञान उसके लिए निरर्थक होगा। प्रयास करने पर भी वह पदों के अर्थों का स्मरण नहीं कर पायेगा क्योंकि उसे पहले से उन पदों का अर्थ ज्ञात नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि किस पद का क्या अर्थ है? कौन सा पद किस अर्थ का वाचक है? यह ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। अत: वाच्यवाचकभाव सम्बन्ध का ज्ञान भी श्रोता के लिए आवश्यक है। वाच्यवाचक सम्बन्ध ज्ञान को ही 'शक्ति-धी' कहा गया है। क्योंकि पदविशेष में अर्थविशेष की शक्ति होती है। गो-पद सास्नादिमान पशु-विशेष अर्थ का बोध कराने में शक्त होता है। अभिप्राय यह है कि प्रत्येक पद का अपना अर्थ होता है, प्रत्येक पद की अपने अर्थ में शक्ति होती है जिसका ज्ञान है, शक्तिज्ञान। इस प्रकार 'शक्ति-धी:' के बिना 'पदार्थ-धी:' नहीं हो सकती। इसलिए तत्र शक्तिधी: सहकारिणी कहा गया है। यदि पदार्थ स्मरण को अवान्तर न माना जाय तो किसी को भी पदज्ञान हो जायेगा।

न्यायसिद्धान्त-मुक्तावली में इस प्रसंग को विवेचित करते हुए कहा गया है कि केवल पदजन्य पदार्थोपस्थिति ही कारण नहीं है अपितु वृत्यापदजन्यपदार्थोपस्थिति को भी कारण कहा जाता है। वृत्ति का तात्पर्य यहाँ शक्ति और लक्षण से है। शक्ति को मीमांसकों ने संकेत नाम भी दिया है। यदि वृत्तिपद जोड़ा जाये तो एक सम्बन्ध वस्तु

का ज्ञान होने पर उसके साथ अन्य वस्तु का भी स्मरण हो जाता है। इस नियम के आधार पर घट पद सुनने के बाद घट पद के समवाय सम्बन्ध के आश्रित आकाश का भी स्मरण हो सकता है।[11] क्योंकि घट पद शब्द होने के कारण गुण है, तथा वह आकाश में समवाय सम्बन्ध से रहता है। घट-पद से आकाश की उपस्थिति होना स्वाभाविक है अत: घट-पद से आकाश का भी शाब्दबोध होने लगेगा। यदि पदार्थज्ञान से कारण पद के साथ वृत्ति जोड़ा जाये, तब शब्द से उसी अर्थ की प्रतीति होगी जिसमें उसका संकेत है। पदज्ञान रहने पर भी संकेतग्रह के न रहने से शक्तिरूप सम्बन्ध या लक्षणारूप सम्बन्ध के द्वारा पदार्थ का स्मरण हो सकता है। अतएव शब्दार्थ संप्रत्यय में शक्तिग्रह या संकेतग्रह की अनिवार्यता का प्रतिपादन किया गया है।[12]

काव्यशास्त्रीय मत-

काव्यशास्त्र का शब्दशक्ति विवेचन इन्हीं न्याय, मीमांसा तथा वैयाकरण के मतों पर आधारित है। अत: वहाँ पर भी शाब्दबोध के लिए संकेत-ग्रह की अनिवार्यता का प्रतिपादन किया गया है। साहित्यशास्त्र में शब्दशक्तियों का सर्वप्रथम विस्तृत विवेचन आचार्य मम्मट ने अपने 'शब्दव्यापारविचार' तथा 'काव्यप्रकाश' नामक ग्रन्थों में किया है।

आचार्य ने शब्द के वाचक, लक्षक तथा व्यञ्जक तीन तरह से भेद किए हैं।[13] उन्होंने वाचक शब्द के लक्षण में संकेत को समाविष्ट किया है। मम्मट के अनुसार जो शब्द साक्षात् संकेतित अर्थ को बतलाता है वह वाचक कहलाता है।[14] वाचक शब्द द्वारा प्रतिपादित अर्थ वाच्यार्थ कहलाता है। यही वाच्यार्थ मुख्यार्थ कहलाता है। मुखमिव मुख्य: इस व्युत्पत्ति के आधार पर सर्वप्रथम शब्द से मुख्यार्थ या वाच्यार्थ की प्रतीति होती है। तत्पश्चात् शब्द लक्ष्यार्थ तथा व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराता है। लक्ष्यार्थ व व्यंग्यार्थ ज्ञान से पूर्व भी वाच्यार्थ का ज्ञान होना आवश्यक है और इस वाच्यार्थ का ज्ञान संकेत के द्वारा ही होता है। अतएव मम्मट का कथन है कि इस लोकव्यवहार में जिस शब्द का संकेतग्रह नहीं होता है उस शब्द के अर्थ की प्रतीति नहीं होती है। अत: संकेत ग्रह की सहायता से ही शब्द अर्थ विशेष का प्रतिपादक होता है।[15] इस प्रकार आचार्य मम्मट ने शाब्दबोध में संकेतग्रह की अनिवार्यता को अंगीकार किया, जिसे अन्य आलङ्कारिकों द्वारा भी स्वीकारा गया है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने भी मम्मट के मत को स्वीकृत किया है।[16] अत: समीक्षात्मक रूप से कहा जा सकता है कि शब्दार्थ विषयक विवेचन के प्रारम्भिक काल से ही विद्वानों ने संकेत को शब्दार्थ सम्बन्ध के रूप में स्वीकार किया है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि शब्दार्थ-सम्बन्ध परम्परा पर भारतीय वाङ्मय, चाहे वह दर्शनशास्त्र हो या व्याकरणशास्त्र अथवा

काव्यशास्त्र, प्रायः सभी ने व्यापक चिन्तन एवं मनन किया है। उनके सूक्ष्म चिन्तन के प्रभाव स्वरूप ही भाषा चिन्तन परम्परा को बल मिला है और शब्द को ब्रह्म की पदवी प्राप्त हुई।

---

१. Prometheus, according to Mr. Percy Basshe Shelley; Gave man speech and speech created thought-which is exactly in our opinion the cart creating the horse, the sign creating the cause- Ullman, language and style - ullman. Language and style p. 206-207 शब्दार्थतत्त्व पृ. २ से उद्धृत

२. सिद्धे शब्दे अर्थे सम्बन्धे च, नित्ये ह्यर्थवतामर्थैरभिसम्बन्धः। म. भा. पस्पशाह्निक पृ. ४९

३. नित्याः शब्दार्थसम्बन्धाः समाम्नाता महर्षिभिः। वा. प., १.२३

४. पूरणप्रदाहपाटनानुपलब्धेश्च सम्बन्धाभावः। न्या. द. २.१.५४ पृ. २०६

५. न हि सर्वथा शब्दार्थापवादोऽस्माभिः क्रियते तस्य आगोपालमपि प्रतीतत्वात् किन्तु तात्त्विकत्वं धर्मो यः परैस्तत्रारोप्यते तस्य निषेधः क्रियते, न तु धर्मिणः। त. सं. पृ. २७७

६. कः पुनरयं समयः? अस्य शब्दस्येदमर्थजातमभिधेयमिति....। न्याङ द० वा० भा०. २.२.५५ पृ. २०८

७. जातिविशेषे चानियमात्। न्या. सू. २.२.५६

८. सामयिकः शब्दार्थसम्प्रत्ययो न स्वाभाविकः। ऋष्यार्यम्लेच्छानां यथाकामं शब्दविनियोगोऽर्थप्रत्ययनाय प्रवर्तते। न्या. द. भाष्य, पृ. २०९-१०

९. संकेतस्तु पदपदार्थयोरितरेतराध्यासरूपः स्मृत्त्यात्मकः योऽयं शब्दः सोऽर्थः सः शब्दः इति। प. ल. मं. पृ. १८

१०. पदज्ञानं तु करणं द्वारं तत्र पदार्थधीः।
शब्दबोधः फलं तत्र शक्तिधीः सहकारिणी।।८१।। न्या. सि. मु. शब्दखण्ड, पृ. ३६८

११. तत्राऽपि वृत्या पदजन्यत्वं बोध्यम्। अन्यथा घटादिपदात् समवायसम्बन्धेनाऽऽकाशस्मरणे जातेः आकाशस्यापि शब्दबोधापत्तेः। न्या. सि. मु. शब्दखण्ड पृ. ३७०

१२. शब्दार्थबोध तथा संकेत सिद्धान्त, पृ. ३७-३८

१३. स्याद्वाचको लाक्षणिकः शब्दोऽत्र व्यञ्जकस्त्रिधा। का. प्र. द्वितीय उल्लास, पृ. ३४

१४. साक्षात्संकेतितं योऽर्थमभिधत्ते स वाचकः। का. प्र. द्वितीय उल्लास कारिका सं. ७ पृ. ४२

१५. इहागृहीतसंकेतस्य शब्दस्यार्थप्रतीतेरभावात् संकेतसहाय एव शब्दोऽर्थविशेषं प्रतिपादयति। का. प्र. कारिका ७ की वृत्ति

१६. द्रष्टव्यः सा. द. द्वितीय परिच्छेद पृ. २७

- सहायक आचार्य, डॉ. शिवानन्द नौटियाल राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कर्णप्रयाग, चमोली (उत्तराखण्ड)

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

योगवासिष्ठ में लोक कल्याण की भावना

- आशीष कुमार

महर्षि वाल्मीकि द्वारा विरचित योगवासिष्ठ भारतीय दर्शन की एक अमूल्य निधि है। महर्षि वाल्मीकि ने जीवन के गूढ़ रहस्यों को प्रकाशित करने के लिये दार्शनिक दृष्टि से योगवासिष्ठ ग्रन्थ की रचना की। ३२ हजार श्लोकों से युक्त योगवासिष्ठ को हम दार्शनिक तत्त्वों के मोतियों से भरा महासागर भी कह सकते हैं। आधुनिक युग के महान् सन्त श्री रामतीर्थ ने योगवासिष्ठ के विषय में अमेरिका में एक भाषण देते हुये कहा था-

"One of the greatest book, and the most wonderful,... ever written under the sun] is yogavasishtha which nobody on earth can read without realizing God-conscoousness."

योगवासिष्ठ में लोक कल्याण की दृष्टि से दार्शनिक ज्ञान को सरलतम माध्यम से सर्वजनग्रह्य बनाने के उनका कथन अवलोकनीय है। यथा-

आख्यानकानि भुवि यानि कथाश्च या या,
यद्यत्प्रमेयमुचितं परिपेलवं वा।
दृष्टान्तदृष्टिकथनेन तदेति साधो,
प्रकाश्यमाशु भुवनं सितरश्मिनेव।।[1]

अर्थात् इस संसार में जितनी भी कथायें और आख्यान हैं और जितने भी उचित और गूढ़ विषय हैं, वे सब दृष्टान्तों के माध्यम से कहने से वैसे ही प्रकाशित होते हैं जैसे कि यह संसार सूर्य की किरणों द्वारा प्रकाशित होता है।

लोक कल्याण की जिस भावना को मुख्य रखते हुए महर्षि वाल्मीकि जी ने योगवासिष्ठ नामक दार्शनिक ग्रन्थ को प्रणीत किया, वह विश्व साहित्य में युग-युग के लिए प्रेरणा स्रोत बन गया। मानव जीवन को अध्यात्म पथ पर चलते हुए अपना कल्याण स्वयं करने के लिये अनुसंधेय ग्रन्थ में प्रेरित किया गया है। लोकल्याणपरक उनका चिन्तन ग्रन्थ में स्थान-स्थान पर दर्शनीय है।

योगवासिष्ठ ग्रन्थ में प्रतिपादित नैतिक एवं मानवीय मूल्य किसी स्थान, जाति, धर्म या कला की परिधि में बँधे हुए नहीं हैं,अपितु शाश्वत तथा सर्वकालिक हैं। यही कारण है कि युगों से जीव मात्र का मार्ग प्रशस्त करता हुआ यह ग्रन्थ वर्तमान तथा भविष्य पर्यन्त 'सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय' की कन्याणपरक नीति, नियमों, आदर्शों, शुद्धाचरण तथा संस्कारों का दिग्दर्शन करने में समर्थ है।

योगवासिष्ठ ग्रन्थ की एक विशेषता इसकी

काव्यात्मकता से परिपूर्ण कथात्मक संवाद शैलीी भी है। इसमें लोक कल्याण की भावना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इसमें आत्मा-परमात्मा, जीव-जगत्, बन्धन-मोक्ष आदि दुरूह विषयों को कथानकों व दृष्टान्तों से युक्त सरलतम विधि से विवेचित किया गया है। अनुसंधेय ग्रन्थ की शिक्षा है कि मानव को अपना कल्याण करने के लिए वैराग्य ग्रहण तथा अहंकार-त्याग अनिवार्य है। योगवासिष्ठ में इन्द्रियभोग में फंसे हुए मानवों की घोर दुर्दशा का विवेचन करते हुए वैराग्य की अत्यन्त आवश्यकता का वर्णन करते हुए राग, ममता, कामना, तृष्णा, इच्छा और अहंकार त्याग की महत्ता अनेक स्थानों पर बतायी गयी है। प्रतिपादित है कि एकमात्र चेतनतत्त्व परब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कोई सत्ता विद्यमान नहीं है। जिस प्रकार समुद्र में उठने-मिटने वाली तरंगे समुद्र से अभिन्न होती हैं, उसी प्रकार अनादि, अनन्त चेतनतत्त्व परब्रह्म में अनन्त ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति व विनाश की लीला तरंगे दृष्टिगोचर होती है। चित्त या अहंकार जो यथार्थ में चेतनतत्त्व परब्रह्म से अभिन्न है, इस दृश्य प्रपंच सृष्टि-स्थिति-लय का कारण है। परम ज्ञान की प्राप्ति के लिए शम, दम, शास्त्रीय सदाचार का सेवन, दैवी सम्पत्ति के गुणों का अर्जन तथा भोगवैराग्यपूर्ण ज्ञान प्राप्ति की इच्छा से गुरु की शरण में जाना आवश्यक है। सद्गुरु वही है, जो शिष्य के अज्ञानतम को अपने निर्मल स्वप्रकाश ज्ञान की विमल ज्योति से दूर कर दे और शिष्य वही है जो विनय तथा सेवापरायण होकर ज्ञानी गुरु से प्रश्न करे और उनकी आज्ञानुसार अपने जीवन का निर्माण करे। मुमुक्ष प्रकरण में महर्षि वसिष्ठ जी कहते हैं-

अतत्त्वज्ञमनादेयवचनं वाग्विदांवर,
यः पृच्छति नरं तस्मान्नास्ति मूढतरोऽपरः।
प्रामाणिकस्य तज्ज्ञस्य वक्तुः पृष्टस्य यत्नतः,
नानुतिष्ठति यो वाक्यं नान्यस्तस्मान्नराधमः।।[2]

अर्थात् वाग्वेत्ताओं में श्रेष्ठ राम! जो मनुष्य तत्त्व का ज्ञान नहीं रखता, उसके वचन मानने योग्य नहीं हैं। ऐसे तत्त्वज्ञानहीन मनुष्य से जो तत्त्वविषयक प्रश्न करता है, उससे बढ़कर दूसरा कोई मूखे नहीं है। इसके साथ ही सद्गुरु से पूछकर भी उस प्रमाणकुशल तथा तत्त्वज्ञानी वक्ता के उपदेश के अनुसार यत्नपूर्वक आचरण नहीं करता, उससे बढ़कर नराधम भी दूसरा कोई नहीं है।

अतः सद्गुरु साधक शिष्य को अहं भावनारूप ग्रन्थि का यथार्थ ब्रह्मज्ञान के द्वारा भेदन करके सच्चा ज्ञानी बनने का उपदेश देता है, केवल ज्ञान का कथनमात्र करने वाले 'ज्ञानबुन्धु' (नकली ज्ञानी) बनने का नहीं। ज्ञानबन्धु से तो अज्ञानी को श्रेष्ठ बताय गया है। यथा-

ज्ञानिनैव सदा भाव्यं राम न ज्ञानबन्धुना।
अज्ञातारं वरं मन्ये न पुनर्ज्ञानबन्धुताम्।।[3]

सत् पुरुष का लक्षण बताते हुए योगवासिष्ठ

में कहा गया है कि-

लोभमोहरूपां यस्य तनुतानुदिनं भवेत्।
यथाशास्त्रं विहरति स्वकर्मसु स सज्जनः।।[४]

अर्थात् जिसके संग से लोभ, मोह और क्रोध प्रतिदिन क्षीण होते हों और शास्त्रानुसार अपने कर्मों को आचरण करने में लगा रहता हो, वह सत् पुरुष है।

योगवासिष्ठ की शिक्षा है कि व्यक्ति को अशुभ कर्मों में लगे हुए मन को वहां से हटाकर शुभ कर्मों में लगाना चाहिए। जो वस्तु कल्याणकारी है, वह तुच्छ नहीं है तथा जिसका कभी नाश नहीं होता, उसी का यत्नपूर्वक आचरण करना चाहिए। यथा-

अशुभेषु समाविष्टं शुभेष्वेवावतारयेत्,
प्रयत्नचित्तमित्येष सर्वशास्त्रार्थसंग्रहः।
यच्छ्रेयो यत्तुच्छं च यदपायविवर्जितम्,
तत्तदाचर यत्नेन पुत्रेति गुरवः स्थिताः।।[५]

योगवासिष्ठ में मन को चित्त की संज्ञा दी गयी है। वासिष्ठ जी कहते है कि हे राम! यह मन भावनामात्र है और भावना का अर्थ है विचार। परन्तु विचार क्रिया का रूप है, विचार की क्रिया से सम्पूर्ण फल प्राप्त होते हैं।

मनोहि भावनामात्रं भावनास्पंदधर्मिणी।
क्रियातद्भावितारूपं फलं सर्वोऽनुधावति।।[६]

यह मन स्वयं भी संकल्प शक्ति से युक्त है। इस लोक में जैसे गुणी का गुण से हीन होना सम्भव नहीं है, उसी प्रकार मन का कल्पनात्मक क्रिया शक्ति से रहित होना असम्भव है। मन जिसका अनुसंधान करता है, उसी का सम्पूर्ण कर्मेन्द्रिय वृत्तियाँ सम्पादन करती हैं। इसलिए मन को कर्म कहा गया है। मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त, कर्म, कल्पना, स्मृति, वासना, अविद्या, प्रयत्न, संस्मृति, इन्द्रिय, प्रकृति, माया, आदि सभी मन की ही संज्ञा है। यथा-

मनोबुद्धिरहंकारश्रिवतंकर्माथकल्पना,
संस्मृतिर्वासनाविद्याप्रयत्नस्मृतिरेव च।।
इन्द्रियं प्रकृतिर्मायाक्रियाचेतीतरा अपि,
चित्रा शब्दोक्रयो ब्रह्मन्संसारभ्रमहेतवः।।[७]

योगवासिष्ठ के उपशम प्रकरण के तेहरवें सर्ग में चित्त की शान्ति के उपाय का वर्णन करते हुए कहा है कि जैसे पूर्वकाल में वेदानुसार अन्य महापुरुषों एवं राजा जनक आदि ने जो आचरण किया है, वैसा ही आचरण करके आप भी मोक्ष पद को प्राप्त करो। इससे आपको तनिक भी दुःख नहीं होगा।

प्रसन्ने सर्वगे देवे देवेशे परमात्मनि।
स्वयमालोकिते सर्वाः क्षीयंते दुःखदृष्टयः।।[८]

समाधि के स्वरूप के बारे में वासिष्ठ जी, श्रीराम से कहते हैं कि अब तुम समाधि का लक्षण सुनो। यह जो गुणों का समूह गुणात्मक तत्त्व है, उसे अनात्म तत्त्व मानकर अपने आप को केवल इनका साक्षीभूत चेतन जानो और जिसका मन स्वभाव सत्ता से लगकर शीतल जल के समान हो गया है उसको ही समाधिस्थ जानना चाहिए।

इमं गुणसमाहारमनात्मत्वेन पश्यतः।
अंतः शीतलतयासौ समाधिरिति कथ्यते।।[९]

जो मैत्री, करुणा मुदिता और उपेक्षा आदि गुणों में स्थित होकर आत्मा के दर्शन से शान्तिमान् हुआ है, उसको समाधि कहते हैं। वास्तव में वही स्वस्थ आत्मा कहलाने का अधिकारी है और उसी को 'समाधि' कहते हैं, जिसके हृदय से संसार का राग-द्वेष समाप्त हो गया और जिसने शान्ति प्राप्त कर ली, उसको सदिव्य समाधिस्थ जानना चाहिए।

प्रशान्तजगदास्थोऽतर्वीतशोकभयैषणः।
स्थाभवति येनात्मा स समाधिरितिस्मृतः।।[१०]

सम्पूर्ण भाव पदार्थों में आत्मा को अतीत जानना समाहित चित्त कहलाता है। समाहित चित्त वाला व्यक्ति चाहे कितने ही जन समूह में क्यों न रहे, मगर उसका किसी से कोई सम्बन्ध नहीं रहता, क्योंकि उसका चित्त हमेशा अन्तर्मुख रहता है। वह सोते-बैठते, खोते-पीते, चलते-फिरते जगत् को आकाशरूप मानता है। ऐसे प्राणी को अन्तर्मुखी कहते हैं। क्योंकि उसका हृदय शीतल होने के कारण उसको सम्पूर्ण जगत् शीतल ही भासता है। वह जब तक जीता है तब तक शीतल ही रहता है।

सच्चे कल्याणकारी पुरुष के विषय में बताते हुए योगवासिष्ठ के स्थिति प्रकरण में कहा गया है कि-

येषां गुणेष्वसंतोषो रागो येषां श्रुतं प्रति।
सत्यव्यसनिनो ये च ते नराः, पशवोऽपरे।।[११]

अर्थात् जिनका गुणों के विषय में संतोष नहीं, जिनका शास्त्र प्रति अनुराग है तथा जिनको सत्य के आचरण का ही व्यसन है, वे ही वास्तव में मनुष्य हैं, अन्य तो पशु ही हैं।

अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि योगवासिष्ठ भारतीय-संस्कृति का प्राण तत्त्व है। योगवासिष्ठ की दिव्य प्रभा समस्त विश्व में विखरकर मानव-जीवन में व्याप्त अज्ञान रूपी अन्धकार, निराशा, दुर्गुण, अनाचार, आधिव्याधि व दिशा भ्रम इत्यादि को दूर करके ज्ञान, सन्तुष्टि, आचार, संयम व सुसंस्कृति इत्यादि का संचार करती है। योगवासिष्ठ में ऐसे अनेक वचन हैं, जिनमें शास्त्रोक्त आचरण, संयम, नियम इत्यादि से जीवन को सुन्दरतम व सुखी बनाया जा सकता है।

---

१. योवासिष्ठ, ३.८४.४७
२. यो. वा. मुमुक्षु-प्रकरण ११.४५-४६
३. यो. वा. निर्वाण-प्रकरण २१.१
४. यो.वा. स्थिति-प्रकरण ३३.१५
५. यो.वा. मुमुक्षु प्रकरण-७.१२-१३
६. यो.वा. उपशम प्रकरण सर्ग ९६-१
७. यो. वा. वही, ९६.१३-१४
८. वही, १३.४
९. वही, ५६.७
१०. वही, ५६, २०
११. यो. वा. स्थिति-प्रकरण ३२.४२

- सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, आर्य कालेज, लुधियाना।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्ष: ७३, सं. ७
अक्टूबर ,२०२४

माहभारत में शुभाशुभ कर्म और फल विवेचन

- प्रदीप कुमार

वेद विदित शुभाशुभ कर्मो और उनके फल को महाभारत में ग्रहण किया है। क्योंकि वेद स्वत: प्रमाणित है। इसी कारण सब शास्त्रों में उसकी प्रधानता है।[1] मानव योनी में रहते हुए हम अनेकों प्रकार के शुभ एवं अशुभ कर्मों को करते हैं जो हमारे प्रारब्ध को भी तैय्यार करते हैं। हमारे द्वारा कृत शुभाशुभ कर्म हमारी योनी व दु:ख-सुख का भी निर्धारण करते हैं। क्योंकि महाभारत में भी कहा है - काम, क्रोद्ध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष आदि अशुभ कर्म या दोषों से युक्त बुद्धि कली प्रेरणा से मन पाप कर्म में प्रवृत्त होता है। इस प्रकार प्राणी अपने ही कार्यों द्वारा पाप करके दु:खमय लोक को प्राप्त होता है।[2] इसी प्रकार दान,यज्ञ,तप नैमित्तिक आदि कर्मो को शुभ कहा गया है।[3] हमारा प्रारब्ध ही हमारे जीवन का भी निर्धारण करता है। जो जो प्राणी जिस-जिस प्रकार के कर्म करता है वह उसी प्रकार फल भी भोगता है।[4] प्राणी जीवन में प्रत्येक पल कर्म करता है। वही कर्म हमारी धरोहर की तरह हो जाते हैं। वह कर्म न्यायव्यवस्थानुसार सुरक्षित रहता है। उपर्युक्त अवसर को प्राप्त कर ही हमारे कर्म हमें सुख एवं दु:ख को प्राप्त करातें हैं।[5] जिस प्रकार से पुष्प एवं फल समयानुसार वृक्षों पर आ जाते हैं उन्हें किसी की प्रेरणा की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि वही उनका उचित समय होता है, उसी प्रकार प्राणी द्वारा पूर्व किये हुए कर्म भी अपने फल भोग के समय का उल्लंघन नहीं करते हैं।[6] इस सृष्टि रूपी जगत में दृष्टिगत होने वाले सम्मान-अपमान, लाभ-हानि तथा उन्नति-अवनति, सुख-दु:खादि ये सभी हमारे द्वारा किये हुए पूर्व कर्मो का ही फल होता है। उन्ही कर्मो के अनुसार पग-पग पर प्राप्त होते रहते हैं। और, प्रारब्ध भोग के पश्चात पुन: निवृत्त हो जाते हैं।[7] इसीलिए महाभारत के शान्ति पर्व में पितामह भीष्म जी कहते हैं- हे राजन! जो द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने मन को वश में रखकर शास्त्रोक्त चारों आश्रम अर्थात् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास इन आश्रमों में रहते हुए उनके अनुसार शुभ-शुभ बर्ताव करते हैं वे सभी दुखों के पार हो जाते हैं। जो प्राणी किसी भी दूसरे व्यक्ति के कटु वचन सुनने के पश्चात एवं निन्दा करने पर भी स्वयं उन्हें किसी भी प्रकार का उत्तर नहीं देते, दण्ड ग्रहण करके भी किसी को दण्ड नही देते तथा स्वयं रक्षा करते हैं और किसी से

नही मांगते है अपितु स्वयं दान देते हैं इस प्रकार के शुभ कर्म करने वाले प्राणी भी दुर्गम संकट से पार पा जाते हैं।[८] महाभारत के अनुसार जो दुष्ट प्राणी अशुभ कर्म, दुर्बुद्धि और दु:साहस को अपना प्रिय मानने वाले हैं वे ही प्राणी दुष्ट आत्मा के नाम से प्रसिद्ध होते हैं। श्रेष्ठ पुरुष तो वही है जो शुभ कर्मो को करते हैं तथा जिनमें सदाचार दृष्टिगत होता है, क्योंकि सदाचार ही उनका लक्षण होता है।[९] शास्त्रों में मनुष्यों के लिए सायंकाल और प्रात:काल दो ही समय भोजन करने का विधान है। बीच में भोजन करने की विधि कहीं भी नही देखी गयी है। जो इस प्रकार का कर्म करता है और नियम पालन करता है, उसे उपवास करने का फल प्राप्त होता है।[१०] नित्यप्रति सूर्योपस्थान करना चाहिये। सूर्योदय के समय कभी भी शयन नहीं करना चाहिये। सायंकाल और प्रात:काल दोनों समय संध्योपासना करके गायत्री मन्त्र का जप करना चाहिये।[११] शुभ कर्म को करने वाला जो होम के समय सदा होम करता है, ऋतुकाल में अपनी स्त्री के पास जाता है और पर स्त्री को कभी भी अव्यवहारिक दृष्टि से न देखता हो, वह गृहस्थी बुद्धिमान् पुरुष ब्रह्मचारी के समान ही माना जाता है।[१२]महाभारत के अनुसार आर्षशास्त्र अतिक्रमणीय नही है, एक श्रेष्ठ पुरुष को सदा ही इनका सेवन करना चाहिये। श्रद्धासहित धर्मशास्त्र के नियमों का पालन करना चाहिये, ऋषिवचनों पर संदेह करना उचित नही है। आर्ष का उल्लंघन करके जो व्यक्ति मनमानी करता है, उसे जीवन में कभी सुख प्राप्त नहीं होता है, वह नितान्त मूढ़ कहलाता है।[१३] जो प्राणी आर्षशास्त्र पर अश्रद्धा करता है। तथा सज्जन महापुरुषों का अनुसरण नहीं करता, वह इहलोक व परलोक कहीं भी श्रेष्ठ लाभ नही पा सकता।[१४] महाभारत के अनुसार शास्त्रादेश पालन का शुभ परिणाम होता है। आचार अनुष्ठान आदि यदि वृथा होते तो देवता, ऋषि, मानव, असुर, आदि अनुष्ठाता शास्त्रों का अनुसरण क्यों करते, ध्यान-धारणा व तपस्या का फल हाथों-हाथ मिलता है। इससे भी अदृष्ट फल का अनुमान लगाया जा सकता है। शास्त्रीय अनुष्ठानों का परिणाम सुखकर होने के कारण ही फल नहीं मिलता, किन्तु समय की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। कर्म का फल एकमात्र शास्त्रगम्य होता है, साधारण बुद्धि द्वारा शुभ या अशुभ का निर्णय करना कठिन है। अज्ञान दोष से मनुष्य की प्रज्ञा आच्छादित रहती है। अत शास्त्रानुशासन पालन करना ही कल्याणकारक है।[१५] शास्त्रविहित अदृष्ट फल में संदेह नहीं करना चाहिये। शुभ कर्म आदि का फल साथ के साथ न दिखाई देने पर भी धर्म पर संदेह करना उचित नहीं है। कर्म का फल अवश्यम्भावी होता है, अत: यथाविधि यज्ञ आदि का अनुष्ठान करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है।[१६] महाभारत के अनुसार कर्म आवश्यक कर्तव्य है। अनुष्ठान किये बिना चित्त शुद्ध नही होता,

अनुष्ठान ही धर्म है। इसलिए कर्म मनुष्य को करना ही चाहिये, यही मनु का अभिमत है।[१७] शान्तिपर्व के अनुसार श्रद्धा ही सब कर्मों का मूल है। शास्त्रविहित कर्म का सबसे बड़ा चिह्न श्रद्धा होती है। बिना श्रद्धा के किसी भी अनुष्ठान का फल नहीं मिलता। अश्रद्धा पाप का कारण है और श्रद्धा पापनाश का। मनुष्य के भाव यदि निर्मल न हो तो अग्निहोत्र, व्रत, उपवास आदि सब बेकार हैं।[१८] महाभारत के अनुसार प्रात:काल गो, घृत, दही, रोचना आदि मांगलिक द्रव्यों का स्पर्श करना शुभ होता है।[१९] शान्तिपर्व के अनुसार स्नान के बाद ही संध्या-उपासना एवं तर्पण का विधान है। प्रात:काल संध्या को सन्ध्योपासना करने का उल्लेख मिलता है। मध्याह्न संध्या के बारे में महाभारत में कुछ नहीं कहा गया है। सन्ध्योपासना के बिना ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व सुरक्षित नहीं रहता है।[२०] शान्तिपर्वीय शुभ कर्मो में अग्निहोत्र भी प्रमुखता से प्रतिपादित है। प्रात: एवं साध्यं कर्मो में होम भी नित्यकर्म है। शास्त्रविधि से अग्न्याधान करना द्विजों का आवश्यक कर्तव्य है। अग्नि की परिचर्चा से ब्राह्मण को उत्तम गति मिलती है। अग्निहोत्र यज्ञ ही सभी वैदिक कर्मो का मूल है।[२१] महाभारत में संध्या एवं उपासना को विशद रूप से उद्धृत किया गया है। यहाँ तक की युद्धकाल में भी संध्या-उपासना का वर्णन मिलता है।[२२] महाभारत के अनुसार देवपूजा के लिए पूर्वाह्न ही उत्तम काल बतलाया गया है। संध्या-आह्निक के बाद देवपूजा का विधान है। देवपूजा किये बिना कभी भी किसी भी यात्रा पर नहीं जाना चाहिये।[२३] महाभारत में कहा है कि भोजन करने से पूर्व ही बलि वैश्वदेव यज्ञ करना चाहिये। यज्ञ द्वारा देवता, आतिथ्य द्वारा मनुष्य एवं बली आदि के द्वारा सर्वभूत की तुष्टि की जाती है।[२४] अन्न पकाने के बाद उस अन्न से अग्नि में यथाविधि वैश्वदेव बलि देनी चाहिये। उसके बाद उसी अन्न की अग्निषोम, धन्वंतरी, प्रजापति आदि देवताओं के उद्देश्य से पृथक् पृथक् आहुति देनी चाहिये।[२५] इसके बाद दक्षिण दिशा में यम को, पश्चिम में वरुण को, उत्तर में सोम को, पूर्व में शक्र को, ईशान कोण में धन्वन्तरी को, वास्तु के मध्य में प्रजापति को, गृहद्वार पर मनुष्य को, घर में मरुद्गणों को एवं आकाश में विश्वेदेवों को बलि देनी चाहिये। रात को निशाचरों के उद्देश्य से बली देनी चाहिये।[२६] महाभारत के अनुसार वैश्वदेव शब्द का अर्थ इस प्रकार है कि जब सब प्राणियों के उद्देश्य से जो दान किया जाए, उसी को 'वैश्वदेव' कहते हैं। रात एवं दिन में भोजन से पहले वैश्वदेवविधि सम्पन्न करनी चाहिये।[२७] उपर्युक्त विधि से अन्न निवेदित करने के बाद परिवार के सभी व्यक्ति जब भोजन कर चुके हों तब गृहस्थ को अन्न ग्रहण करना चाहिये।[२८] काम्यव्रत एवं अनुष्ठानादि में गोश्रिग अभिषेक नामक एक अनुष्ठान का भी उल्लेख मिलता है। प्रात काल स्नान, आह्निक के बाद चरागाह में जाकर

दर्भवारि अर्थात् कुशमिश्रित जल से गोश्रिग का अभिषेक करना चाहिये और वही जल अपने मस्तक पर लगाना चाहिये, इससे समस्त तीर्थो के स्नान का फल मिलता है।[२९] पूर्णिमा के दिन खड़े होकर घृत.अक्षत युक्त जल अंजलि द्वारा सोम के उद्देश्य से निवेदित किया जाए तो होमकार्य का पुण्य फल मिलता है। दूसरी जगह कहा है कि ताम्र पात्र से मधुमिश्रित पके हुए अन्न की सोमबलि देने से, उस बली को साध्य, रुद्र, विश्व, अश्विनिकुमार एवं दूसरे देवता ग्रहण करते हैं।[३०] पौष मास के शुक्ल पक्ष में यदि रोहिणी नक्षत्र का योग हो तो उस योग को आकाश-शयन कहा जाता है। उस दिन स्नान कर व शुचि होकर, एक वस्त्र पहन कर भक्तिभाव से सोमरश्मि का पान करने से महायज्ञ का फल मिलता है।[३१] महाभारत के अनुसार अमावस्या के दिन वृक्ष छेदन निषिद्ध है, यदि काटते हैं तो ब्रह्म हत्या का पाप लगता है।[३२]

---

१. शात्तिपर्व, २६९-४३ वेदे सर्वं प्रतिष्ठितम्।।
अनुशासनपर्व/शासनपर्व १०६,६५ नास्ति् वेदात परं शास्त्रम्।
२. वही, १८१,२ आत्मनानर्थयुक्तेन पापे निवि मन। स्वकर्मकलुशं कृत्वा कृच्छे लोके विधीयते।।
३. वही, १८२,१ यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा तपस्तसं तथैव च.....
४. शान्तिपर्व १२२,१० येन येन यथा यद् यत्पुरा कर्म सुनिश्चितम्। तत् तदेकतरो भुंक्ते नित्यं विहितमात्मना।।
५. वही, १२२, ११ स्वकर्मफलनिक्षेपं विधानपरिरक्षितम्। भुतग्राममिमं काल : समन्तादपकर्षति।।
६. वही, १२२,१२ अचोद्यमानानी यथा पुष्पाणि च फलानि च।
स्वं कालं नाति वर्तन्ते तथा कर्म पूरा कृतम्।।
७. वही, १२२,१३ सम्मानश्चावमान्श्च लाभलाभौ क्षयोद्यौ।
प्रवृत्ता विनिवर्तन्ते विद्यानानते पदे पदे।।
८. वही, ११०,४ प्रत्याहूर्नोच्यमाना ये न हिंसन्ति च हिंसिता:
प्रयछन्ति न याचन्ते दुर्गान्यातितरन्ति ते।।
९. शान्तिपर्व ११०, ४ दुराचारा दुर्विचेष्टा दुष्प्रज्ञा: प्रियसाहसा:
असंतस्तविति विख्याता: संतश्चाचारलक्षणा:
१०. शान्तिपर्व ११०,४ सायं प्रातर्मनुष्याणामशनं वेदनिर्मितम्।
नांतरा भोजनं दृष्टमुपवासी तथा भवेत्।।
११. शान्तिपर्व ११०,४ सूर्यं सदोपतिष्ठेत न च सूर्योदये स्वपेत्।
सायं प्रातर्जपेत् सन्ध्यां तिष्ठन् पूर्वं तथेतराम्।।
१२. शान्तिपर्व १९३,११ होमकाले तथा जुह्वन् ऋतुकाले तथा व्रजन्।
अनन्यस्त्रीजन: प्राज्ञो ब्राह्मचारी तथा भवेत्।।
१३. वनपर्व ३१,२१ आर्षप्रमाणमुत्क्रम्य धर्मं न प्रतिपलयन्।

शात्रतिगो मूढ़: शं जन्मसु न विन्दति।।

भीष्मपर्व ४०,२३ य: शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारत:।
न स सिद्धिम्वाप्रोति न सुखं न परं गतिम्।।

१४. वनपर्व ३,२२ यस्य नार्ष प्रमाण स्याक्ष्छिष्टाचारश्च भाविति।
नैव तस्य परो लोको नायमस्तीति निश्चय:

१५. वनपर्व ३१, २८३६ विप्रलम्भो अमत्यन्त यदि सुफला क्रिया:।

१६. वनपर्व ३१,३८,३९ न फलादर्षनाद्धर्म शिक्त्यो न देवता:
यष्टव्यं च प्रयत्नेन दातव्यं चान्सुयता।।

१७. वनपर्व ३२,३९ कर्तव्यमेव कर्मेति मनोरेष विनिश्चय:।

१८. शान्तिपर्व २६३,१५ अश्रद्धा परमं पापं श्रद्धा पापप्रमोचिनी।
जहाति पापं श्रद्धावान् सर्पो जीर्णामिव त्वचम्।।

१९. अनुशासनपर्वशासनपर्व १२६,१८ कल्य उत्थाय यो मर्त्य: स्परिशेद मां वे घृतं दधि।

२०. शान्तिपर्व १९३,५ सायं प्रातजर्पेत संध्यां तिष्ठन् पूर्वां तथेतराम्।

२१. वही, २९२,२०,२२ आहिताग्निर्हि धर्मात्मा य: स पुण्यकृदुत्तमम्।

२२. वही, ५८,३० उपास्य सन्ध्यां विधिवत् परन्तपा:

२३. अनुशासनपर्व १०४,२३,४६ पूर्वाह्न एव कुर्वीत देवतानांच पूजनम्।

२४. अनुशासनपर्व १०४, २३, ४६ सदा यज्ञेन देवाश्च तदातिथ्येन मानुषा।

२५. अनुशासनपर्व ९७,१० अग्नीषों वैश्वदेवं धान्वन्तर्य धान्वन्तर्यमनन्तरम्।
प्रजानां पतये चैव पृथग् घोमो विधीयते।।

२६. अनुशासनपर्वशासनपर्व ९७, १११४ तथैव चानुपर्व्येभ बलिकर्म प्रयोजयेत्।
दिक्षिनाया यमायेती प्रजीच्या वरुणाय च।।

२७. अनुशासनपर्वशासनपर्व ९७,२२ श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपद्भुवि।
वैश्वदेवं हि नामैतत् सायंप्रातर्विधियते।।

२८. अनुशासनपर्व ९७,२१ गृहस्थ: पुरुष: कृष्ण शिष्टाशी च सदा भवेत्।

२९. अनुशासनपर्व १३०,१०१२ कल्यमुत्थाय गोमध्ये गृहयेद् दर्भान् सहोदकान्।
निसिचेत गवां श्रिगे मस्तकेन च तज्जलम्।।

३०. अनुशासनपर्व १२७,१,२ सलिलस्यान्जली पूर्णमक्षताश्च घितोत्तरा:
सोमस्योतिष्ठितमानस्य जज्जलं चाक्षताश्च तान्।।

३१. अनुशासनपर्व १२६,४८,४९ पौषमासस्य शुक्ले वै यदा युज्येत रोहिणी।
तेन नक्षत्रयोगेन आकाशशयनो भवेत्।।

३२. अनुशासनपर्व १२७,३ वनस्पतिन्व यो हन्यादमावस्यामबुद्धिमान्।
अपि ह्येकेन पत्रेण लिख्यते ब्रह्हत्यया।।

– सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, श्रीमती अरुणा असफ अली,
राजकीय स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, कालका (हरियाणा)।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

जनार्दनहेगड़े द्वारा संस्कृत लघुकथा साहित्य संवर्द्धन मे योगदान

- दीपेन्द्र किशोर आर्य, एवं प्रो. अशोक कुमार

मानव की स्वाभाविक भाषा का रूप गद्यात्मक होता है, क्योंकि उसमें छन्द, गण या मात्रा की गणना नहीं होती। पद्य में इनकी गणना होने से पद्यात्मक अभिव्यक्ति कृत्रिम रूप धारण कर लेती है। वस्तुतः गद्य ही मानव की अभिव्यक्ति की मौलिक प्रक्रिया है।

गद्य शब्द 'गद् व्यक्तायां वाचि' धातु से 'यत्' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है जिसका अर्थ होता है – कहा जाने योग्य। संस्कृत साहित्य में गद्य का प्रयोग वैदिक काल से होता आया है। गद्य का प्रथम स्वरूप हमें यजुर्वेद की संहिताओं में मिलता है। कृष्ण यजुर्वेद की प्रायः सभी शाखाएं गद्ययुक्त हैं। अथर्ववेद में भी कुछ मात्रा में गद्य की प्राप्ति होती है। वैदिक संहिता के अनंतर ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों पुनः उपनिषदों में प्रयुक्त होता हुआ; गद्य सूत्र ग्रन्थों, बौद्ध ग्रन्थों, पौराणिक ग्रन्थों तथा शास्त्रीय ग्रन्थों की यात्रा करता हुआ लौकिक संस्कृत तक आ पहुँचता है। यहाँ यह सर्वप्रथम पतञ्जलि द्वारा निर्देशित वासवदत्ता, सुमनोत्तरा तथा भैमीरथी में प्राप्त होता है। तदनन्तर इसका विकसित रूप दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट की रचनाओं में हमें देखने को मिलता है।

19वीं शताब्दी के पूर्व विरचित संस्कृत-साहित्य में गद्यकाव्य में दो प्रकार विशेष प्रचलित रहे हैं – कथा और आख्यायिका। आधुनिक काल में यूरोपीय भाषाओं तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य के साथ सम्पर्क से उपन्यास तथा कथानिका – गद्य की इन दो कथाप्रधान विधाओं का संस्कृत साहित्य में अवतरण हुआ है।

कथानिका(कहानी) गद्य की ऐसी विधा है जिसमें जीवन के किसी एक प्रसंग, किसी एक घटना या मनःस्थिति का वर्णन होता है। कहानी में किसी घटना या प्रसंग का वर्णन कुछ पात्रों को केन्द्र में रखकर किया जाता है। यह घटना या प्रसंग अन्तर्जगत् से भी संबद्ध हो सकता है अथवा बाह्यजगत् से भी। संवाद तथा वातावरण का चित्रण इसके महत्वपूर्ण घटक हैं। अभिराजराजेन्द्रमिश्र ने कथानिका का लक्षण निर्धारित करते हुये कहा-

प्रतिष्ठाधुरमध्यास्ते कथाभेदो हि कश्चन।
अभीष्टा सर्वभाषासु प्रोच्यते सा कथानिका।।
गृहीत्वा किमप्युद्देश्यं लोकाभ्युदयकारकम्।

चित्रणेन चरित्राणां सरत्यग्रे कथानिका।।
क्वचित्पात्रमुखेनैव क्वचिल्लेखकभाषया।
क्वचित्संवादपद्धत्या पूर्वोन्मेषदिशा क्वचित्।।[1]

आधुनिक समय में कथानिका (कहानी) संस्कृत के क्षेत्र में भी अत्यन्त लोकप्रिय हुई है। संस्कृत में कथानिका लिखने वालों की एक दीर्घ परम्परा हमें प्राप्त होती है। कथानिका रचनाकारों में अनन्ताचार्य के दो कथा-संग्रह 'कथा-मंजरी' तथा 'नाटककथासंग्रह' प्रसिद्ध हैं। भट्टमथुरानाथ शास्त्री ने अनेक कथानिकाओं की रचना की है। गोस्वामी हरेकृष्णशास्त्री की 'ललितकथा-कल्पलता' अत्यन्त प्रसिद्ध है। अंबिकादत्त व्यास ने 'कथाकुसुम' में अनेक कथाओं की रचना की। पण्डिता क्षमाराव, हरिदत्त पालीवाल, कलानाथ शास्त्री, राजेन्द्र मिश्र, केशव चन्द्रदास, कालूरि हनुमन्त राव, वीणापाणि पाटनी, नलिनी शुक्ला, एच. विश्वास, प्रभुनाथ द्विवेदी, इच्छाराम द्विवेदी, प्रशस्यमित्र शास्त्री, अभिराजराजेन्द्र मिश्र, राधावल्लभ त्रिपाठी सदृश अनेक आधुनिक रचनाकार संस्कृत में कथानिकाओं की रचना कर रहे हैं। इस विधा के एक प्रमुख रचनाकार हैं - जनार्दन हेगड़े।

जीवन -परिचय :-

जनार्दन हेगड़े कर्नाटक की धरती पर अवतरित हुए प्रसिद्ध संस्कृतकथाकारों में से एक हैं। इनका जन्म कर्नाटक राज्य के उत्तर कर्नाटक जिले के सुरसी तालुका के अंतर्गत देवदाकेरी नामक ग्राम में 02 जून 1955 ई. को हुआ। स्वर्गीय रामकृष्ण शिवराम हेगडे इनके पिता तथा स्वर्गीय सत्यभामा हेगड़े इनकी माता थी। इन्होंने कर्नाटक माध्यमिक शिक्षा परिषद से अलंकार विद्वत् की उपाधि ग्रहण की। तत्पश्चात् राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (वर्तमान में केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय) नई दिल्ली से शिक्षाशास्त्री की उपाधि ग्रहण की। उसके बाद सर्वप्रथमा की उपाधि, एस.एम.एस.पी संस्कृत कॉलेज उडुपी से प्राप्त की। अलंकार शास्त्र में इन्होंने पूरे कर्नाटक में प्रथम स्थान प्राप्त किया। कवि कुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय रामटेक से डी.लिट की उपाधि प्राप्त की है।

सम्मान तथा पुरस्कारः-

इन्हें इनकी संस्कृत सेवा के कारण इन्हें 2019 में 'राष्टपति अलंकरण' से सम्मानित किया गया है। इनके द्वारा कन्नड़ भाषा से संस्कृत में अनूदित 'धर्मश्री' को 'केन्द्रीय साहित्य अकादमी' पुरस्कार से 2005 ई.में सम्मानित किया गया है। इन्हें उच्च लेखन-क्षमता के कारण 2011ई. में प्रसिद्ध 'एम.हरियन्ना' पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। 2014 ई. में सोमनाथ संस्कृत विश्वविद्यालय से इन्हें 'डी .लिट्' की मानद उपाधि प्राप्त हुई। 2015 ई. में अपनी रचना 'बालकथासप्तति' के लिए गुजरात सरकार द्वारा 'बालसाहित्य-पुरस्कार' भी प्राप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त श्री हेगड़े जी को 'महर्षि नारद प्रशस्ति सम्मान', 'संस्कृतसेवा वसन्त', 'भाषा भारती'

पुरस्कार से भी सम्मानित किया जा चुका है।

जनार्दन हेगड़े की कृतियाँ :-

इनके द्वारा रचित कथा साहित्य को चार प्रमुख भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है:- उपन्यास, कथासंग्रह, बालकथासाहित्य तथा अनूदित कथा साहित्य।इनके द्वारा रचित कथा - साहित्य का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

उपन्यास

क. आश्रमं परित: - 2012 में प्रकाशित कल्पना प्रधान कथा पर आधारित उपन्यास।

ख. मल्लिका

ग. कौस्तुभमणि:

क. बाल-कथा-सप्तति

ख. बालकथास्रवन्ती- 2015 में प्रकाशित तथा 2020 में पुन: प्रकाशित 65 बाल कथाओं का संग्रह।

ग. कथाकावेरी - 2020 में प्रकाशित 60 बालकथाओं का संग्रह।

अनूदित कथासाहित्य

क. कनकावरणम् - सरस्वती सेवा योजना के अन्तर्गत 2014 में प्रकाशित। कन्नड लेखक के. एन. गणेशय्य की कनककुसुम का संस्कृत अनुवाद।

ख. ग्रन्थिलम् - सरस्वती नटराज द्वारा कन्नड में लिखित सिक्कू उपन्यास का अनुवाद। 2019 में प्रकाशित।

ग. धर्मश्री:- 2000 में प्रकाशित यह ग्रन्थ कन्नड के प्रसिद्ध लेखक एसएल् भैरप्प: का संस्कृत अनुवाद है।साहित्य अकादमी द्वारा 2005 में इस ग्रन्थ को अनुवाद श्रेणी मेंपुरस्कार प्राप्त किया।

घ. दृष्टिदानम् -कन्नड भाषा में डा. दोड्डेरिवेंकट गिरिराव द्वारा लिखित दृष्टिदान का संस्कृत अनुवाद। मानव प्रवृत्तियों पर आधारित यह कथा अत्यंत प्रासंगिक है।

ङ. वंशवृक्ष: -सरस्वती सेवा योजना के अन्तर्गत प्रकाशित डा.एस्. एल् भैरप्प द्वारा कन्नड में लिखित वंशवृक्ष का अनुवाद, 2012 में प्रकाशित।

च. अंकुश:- डालमिया ग्रन्थमाला के अन्तर्गत 2011 में प्रकाशित। 5 कथाओं का अनुवाद। हिन्दी नरेन्द्र कोहली, मलयालम एस. महादेवन् थम्पि,कन्नड़ के मनु,श्रीनिवास की कथायें हैं।

छ. व्यूहभेद: -2007 में प्रकाशित।19 कथाओं का संग्रह।

ज. स्वीकार:

स्वरचित कथासाहित्य

क. इन्दुलेखा :- 2019ई. में प्रकाशित 12 कथाओं का संग्रह जिसकी भूमिका अभिराजराजेन्द्र मिश्र ने लिखी है।

ख. अनभिषंग:- 2017ई. में संस्कृत प्रमोशन फाउन्डेशन के सहयोग से प्रकाशित। 16कथाओं का संग्रह।

ग. संसक्तिः- 15 कथाओं का संग्रह।2014ई. में प्रकाशित।

घ. संतृप्तिः -2015ई. में प्रकाशित 20 कथाओं का संग्रह जिसकी भूमिका आचार्य शतावधानी गणेश जी ने लिखी है।

ङ. जीवनदृष्टिः -2012 ई. में प्रकाशित 15 कथाओं का संग्रह। जीवनमूल्यों पर आधारित कथायें।

च. उत्फुल्लम् अन्तरंगम् -15 कथाओं का संग्रह। 2013ई. में प्रकाशित।

छ. अनुबन्धः-11कथाओं का संग्रह। कुलपरंपरा की वैज्ञानिकता,अंग्रेजों के अत्याचार, सामाजिक अन्धविश्वास, वैज्ञानिक अन्वेषण को प्रदर्शित करती कथायें हैं। 2011ई. में प्रकाशित।

सामाजिक सन्देश

जनार्दन हेगड़े द्वारा लिखित 'परिवर्तमाना दशा'[2] शीर्षक कहानी बैंकों की आज की कार्यप्रणाली परतीखी टिप्पणी है, जो अपना कार्य येन केन प्रकारेण सिद्ध करती है। कार्यसिद्धि के लिए धूर्तता का आश्रय लेना अब स्वभाव सा बन गया है। 'हरसि किञ्चन धरसि किञ्चन'[3] शीर्षक कहानी उत्तराखंड में भूस्खलन तथा बाढ़ की विभीषिका का भयावह चित्र है, जो समाज की पीड़ा को व्यक्त करता है।'साम्राज्यस्य सौभाग्यम्'[4] शीर्षक कहानी में शांतिदेव के चरित्र के माध्यम से यह सन्देश दिया गया है कि ईमानदार व्यक्ति व्यर्थ कि औपचारिकताओं में नहीं पड़ता है। उसे कार्य करने के लिए अवसर चाहिए ना कि पद। 'शक्ष्यामो वयम्'[5] में गोरक्षणपरायण गोवर्धनाचार्य का प्रेरणाप्रद प्रसंग है,जो आज के गौमांस भक्षकों या व्यापारियों के द्वारा अनुकरणीय है । 'आधार'[6] नामक कहानी आदर्श प्रेम के सन्देश को प्रसारित करती है। 'काले प्रवर्तेत'[7] के द्वारा वंश वृद्धि को स्वयं तथा समाज के स्वस्थ वातावरण के लिए आवश्यक बताया गया है। यह कथा उन युवतियों को जरूर पढ़नी चाहिए जो कथानायिका वाणी की तरह हीं अपनी उद्यमिता को पारिवारिक वृद्धि से ऊपर रखती हैं। 'वसुधैव'[8] कथानायक श्रीधर के समान सेवानिवृत्ति के बाद के जीवन को जीने की कला सिखाती है जो पुत्रों पर आश्रित न रहकर सामाजिक बनकर अपना जीवन यापन कर रहा है।'कः त्राता'[9] कथा के माध्यम से लड़कियाँ हीं पारिवारिक जीवन की धुरी हैं- यह सिद्ध किया गया है। पुत्र अच्युत द्वारा घर - संपत्ति का सर्वनाश कर देने की स्थिति में भी बहु सरस्वती अपने सूझ - बुझ से स्थिति को नियंत्रित करती है। 'मूले प्रीतिः'[10] जन्मस्थान को छोड़कर ना जाने के सन्देश को प्रसारित करती है। यह प्रभु श्री राम के सन्देश को याद दिलाती है - जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। 'यत्र पार्थकृष्ण..'[11] कार्यक्षेत्र में हो रहे महिलाओं के यौन उत्पीड़न के प्रति समाज को जागरूक करती

है। 'तदपि वरमेव'[१२] इक्कीसवीं सदी में भी विधवा स्त्रियों को समाज के द्वारा प्रताड़ित किया जाता है, इसको इंगित करती है। एक विधवा भी सम्मान के जीवन जीने की अधिकारी है, राधा देवी के चरित्र के द्वारा दर्शाया गया है। 'अवसरो नहि च्युत:'[१३] कथा के माध्यम से अंगदान के प्रति समाज को जागरूक किया गया है। 'निस्तार:'[१४] लोभ के कारण संबंधों में आ रही शिथिलता के प्रति समाज को जागरूक करने के साथ साथ मानवीय मूल्यों के क्षरण को भी दर्शाती है।संपत्ति हड़पने के लिये गृद्धदृष्टि लगाये रखने वाले अर्थपिशाचों की मनोवृत्तियों का यथार्थ चित्रण है। 'कारणम् अंतरा'[१५] घरों में विद्यमान पाण्डुलिपियों की महत्ता को रेखांकित करती है तथा इसके संरक्षण की भावना लोगों को समझाती है। ये पाण्डुलिपियाँ भारतीय ज्ञानपरम्परा की स्रोत हैं। 'क्वचिदंशे मूर्खता'[१६] लोभ के प्रभाव को दर्शाती हुयी इससे बचने की शिक्षा देती है। केशवमूर्ति जैसा सज्जन भी इसके प्रभाव से अपने आपको नहीं बचा सका और जीवन के उत्तरार्ध में कारावास पहुंच गया। 'चिरायुष्क परियोजना'[१७] वर्तमान समय में आगत तकनीक के कृष्ण पक्ष को प्रदर्शित करती है कि मनुष्य सरलता के लिए तकनीक पर ही आश्रित होता जा रहा है। यह तथ्य ही उसके विनाश का कारण बनेगा। 'क्षणगणना मात्रम् न'[१८] आयुर्वेद कि क्षमता को प्रतिष्ठित करता है, यह आधुनिक चिकित्सा प्रणाली को हेय नहीं दिखाता अपितु पुरातन चिकित्सा पद्धति भी अनुकरणीय है इसकी स्थापना करता है। 'बलिरद्वितीय:'[१९] एक ऐतिहासिक कथा है जिसके माध्यम से स्वतंत्रता- संग्राम के शहीदों को पुन: याद किया गया है।स्वतंत्रता - संग्राम के शहीदों ने अपनी अवस्था को भी नहीं देखा और अपना बलिदान दिया, उसे हमें व्यर्थ नहीं करना है। 'कुलाचार:'[२०] लोक में प्रचलित परंपराओं के पीछे विद्यमान पूर्वजों की बृहद् मानसिकता को दर्शाता है, तथा भावी पीढ़ी को उसके पालन करने के लिए प्रेरित करता है।

उपसंहार :-

इस प्रकार हम देखते हैं कि जनार्दन हेगड़े की कहानियों में संस्कृत की कहानी ने आज की वास्तविकता का वरण करते हुए संस्कृत का संस्कार और आधुनिकता का निखार पाया है। इनकी सभी कहानियों में युगबोध तथा आधुनिक चेतना परिव्याप्त है। हेगड़े जी ने भारतीय पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन का सरस और प्रामाणिक चित्रण इन कहानियों में किया है। वह अटूट मैत्री-सम्बन्धों का भी मार्मिक निरूपण करते हैं। इनकी कहानियाँ समस्याप्रधान होती हैं। प्राय: समस्या ऐसी जटिल होती जाती है कि उसके समाधान की दिशा खुलती नहीं दिखती। अपनी परिणति में कहानी जिस तरह इन सारी जटिलताओं को सुलझा देती है, वहां पाठक को

चकित हो जाना पड़ता है। हेगड़े की सभी कहानियां विकट जीवन-संघर्षों के बीच सामाजिक आदर्शों की रक्षा के लिए प्रेरणा प्रस्तुत करती हैं। सभी कहानियों में मनुष्य के शुभ संकल्प और आदर्श चरितार्थ होते हैं जिनसे समाज में मित्रता, बंधुता का भाव अभिव्यक्त होता रहे।

सन्दर्भ सूची :-

१. अभिराजयशोभूषणकरिका 111-113

२. संसक्ति, पृष्ठ 32-44

३. वहीं, पृष्ठ 58-69

४. अनभिषन्ना, पृष्ठ 10-23

५. वहीं, पृष्ठ 24-34

६. वहीं,35-49

७. जीवनदृष्टि,पृष्ठ 11-16

८. वहीं, पृष्ठ 22-28

९. वहीं, पृष्ठ 29-38

१०. संतृप्ति, पृष्ठ 34-41

११. वहीं, पृष्ठ 82-94

१२. वहीं, पृष्ठ 96-103

१३. अनभिषन्ना

१४. संसक्ति, पृष्ठ 1-9

१५. वहीं, पृष्ठ 10-19

१६. वहीं, पृष्ठ 20-31

१७. अनुबंध:, पृष्ठ 47-57

१८. वहीं,पृष्ठ 58-64

१९. वहीं, पृष्ठ 19-26

२०. वहीं, पृष्ठ 01-05

- संस्कृत विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना (बिहार)।

विश्वज्योति वर्ष: ७३, सं. ७
ISSN 0505-7523
अक्टूबर ,२०२४

रामचरित मानस में माता कैकेयी की करुण कहानी

- शैलजा आरोड़ा

अयोध्या के राजा दशरथ की अति प्रिय रानी कैकेयी के द्वारा दो वरदान मांगना उसका अपना कोई चिन्तन नहीं था लेकिन दासी मंथरा ने जब इन दो वरदानों के साथ भरत की भावी सुरक्षा का सवाल भिन्न-भिन्न युक्तियों के माध्यम से समझाया तो अपने हित अनहित का विचार किए बिना एक माँ के हृदय ने कुटिल मंथरा की सलाह के अनुसार वे दो वरदान महाराज दशरथ से मांग ही लिए जो अन्तत: रामायण की कथा के आधार बने।

वस्तुत: इस सुरक्षा के चिन्तन के कारण कैकेयी को अपने जीवन में जो लांछना और अवमानना मिली उसके चलते उनका प्रारब्ध ही अभिशप्त हो गया। रामायण के नारी पात्र कैकेयी का स्मरण आम आदमी घृणा और तिरस्कार के साथ करता है। आज भी कोई अपनी पुत्री का नाम कैकेयी नहीं रखता और न ही रामायण के दौरान कैकेयी के चरित्र पर किसी का ध्यान जाता है। मैथिलीशरण गुप्त ने साकेत में कैकेयी के लांछन को दूर करने का प्रयास किया है। राम से इतना अधिक स्नेह करने वाली कैकेयी इतनी अधिक कठोर हो गई कि उन्हें वनवास दे डाला। पुत्र प्रेम के स्वार्थवश ऐसे दो वरदान मांग बैठी कि उसके जीवन को ही कलंकित कर दिया। क्या संसार कैकेयी के उसी रूप से परिचित रहेगा? क्या वे तथ्य सामने नहीं आने चाहिए जिनके कारण कैकेयी को कलंकित होना पड़ा?

कैकेयी निन्दा की पात्र है या वंदना की अथवा वह रघुवंश का हित चाहती थी या अनहित, यह विचारणीय विषय है हमारे लिए। संतजनों का कथन है कि माता कैकेयी वंदनीय और सिर्फ वंदनीया ही है। उनके कथनानुसार वस्तु स्थिति को जानने के लिए हमें अतीत में जाना होगा। पूर्व कथा कहती है कि श्रवण कुमार के पिता रत्न ऋषि नन्दीग्राम के राजा अश्वपति के राजपुरोहित थे और कैकेयी राजा अश्वपति की बेटी थी। रत्न ऋषि ने कैकेयी को सभी शास्त्र, वेद तथा पुरुणों की शिक्षा दी। एक दिन बातों ही बातों में अयोध्या नरेश महाराजा दशरथ की चर्चा चल पड़ी। रत्नऋषि ने कैकेयी को बतलाया कि दशरथ की कोई संतान राजगद्दी पर नहीं बैठ पायेगी और साथ ही ज्योतिष गणना के अनुसार यह भी बतलाया कि दशरथ की मृत्यु के पश्चात् यदि चौदह वर्ष के दौरान कोई संतान गद्दी पर बैठ भी

गई तो रघुवंश का नाश हो जाएगा। यह बात कैकेयी ने पूरी तरह हृदयंगम कर ली और विवाह के बाद भी कैकेयी के मन में यह बात पूरी तरह समाई हुई थी। अब दशरथ के साथ कैकेयी के विवाह के प्रसंग पर आते हैं। अवध नरेश ने कैकेयी के पास कैकेयी के साथ विवाह करने की इच्छा व्यक्त करते हुए प्रस्ताव भेज दिया। कैकेयी राज ने प्रस्ताव तो स्वीकार कर लिया, लेकिन शर्त के साथ। कैकेयी राज ने शर्त यह रखी कि महाराज! आप यह वचन दें कि मेरी कन्या से जो पुत्र होगा उसी को राज्य मिलेगा। लेकिन सूर्यवंश की परम्परा यह थी कि ज्येष्ठ पुत्र ही को राजा बनाया जाएगा। लेकिन उस समय राजा की मानसिक स्थिति ऐसी थी कि उन्होंने शर्त स्वीकार कर कैकेयी के साथ विवाह कर लिया।

जब राम के राजतिलक करने का अवसर आया तो बुद्धिमती कैकेयी को राजपुरोहित के कथन का स्मरण हो आया और उसने यह निश्चय कर लिया कि वह अपने प्रिय पुत्र राम को रघुवंश के विनाश का कारण नहीं बनने देगी और वही हुआ। राम के बन गमन के पश्चात् भी कैकेयी भरत के लिए भी यही चाहती थी कि वह राजसिंहासन पर बैठकर राज्य का संचालन न करे और यही हुआ। भरत ने राजकार्य तो संभाला लेकिन राजसिंहासन धारण न कर सिंहासन पर राम की चरणपादुका स्थापित कर राजकीय शासन कुशासन पर बैठकर संचालित किया। इस प्रकार भरत ने नन्दीग्राम में कुशासन पर बैठकर अयोध्या को शासन दिया। विद्वतजनों का मानना है कि राम की चौदह साल की वनवास की अवधि में एक भी मौत नहीं हुई। इतनी ज्ञानवान और गुणवान और राम को भरत से भी अधिक प्रेम करने वाली कैकेयी ने कुटिल मंथरा के बहकाने में कैसे आ गई। संतजनों का कहना है कि मानस का गंभीरता से अध्ययन करने पर ज्ञान होता है कि मंथरा की कुटिल बातें सुनकर कैकेयी ने क्या कुछ नहीं कहा– 'पुनि अस कबहुँ कहसी घरफोरि, तब धरि जीभ कढ़ावहु तोरि' और फिर तुलसी दास जी ने एक दोहे द्वारा कैकेयी के मुख से यह कहलवाया– 'कोने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि, तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरतमातु मुसुकानि' इसके अलावा कैकेयी के चरित्र के संदर्भ में कोई राय बनाने के पूर्व देवताओं और सरस्वती की भूमिका पर भी तो विचार किया जाना चाहिए। ऐसी परिस्थिति से घिरकर ही तो कैकेयी को ऐसे दो वरदान मांगने पड़े जिनके चलते वह हर काल और युग में एक कलंकिनी के रूप में ही परिभाषित होती रही। अपने जिस पुत्र भरत के लिए राज्य मांगा उसी पुत्र से कैकेयी को कितनी लांछना भोगनी पड़ी थी।

जौ पै कुरुचि रही अति तोहि,

जनमत काहे का मारे मोहि।

भरत ने अपनी माता के प्रति जैसे कुवचन– 'पापिनि सबहिं भांति कुल नासा' कहे उनको भी

कैकेयी रघुवंश की सुरक्षा के लिए सहन कर गई। भरत ने इस चौपाई में तो एक माँ के प्रति वांछित किसी मर्यादा का ध्यान नहीं रखा-

जबतै कुमति कुमत जियँ उयऊ,

खंडखंड होई हृदय न गयऊ।।

बार मागत मन भइ नहिं पीरा,

गरि न जीह मुँह परउन कीरा।।

इन शब्दों में भरत जी कैकेयी की घोरतम निन्दा करते हैं। भगवान राम ने भरतजी को चित्रकूट में कैकेयी की इस तरह कठोरतम निन्दा करने से रोका तो भरत जी ने कहा कि मैं अकेला कैकेयी की निन्दा नहीं कर रहा हूं बल्कि 'जननि कुमति जगतु सबु साखी' यहाँ तक कि निषादराज की दृष्टि में भी कैकेयी का चरित्र ऐसा ही है यथा- '**कैकेयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिल पुनकीन्ह**' लेकिन राम इस तरह के किसी मत से सहमत नहीं जान पड़ते। राम कहते हैं

दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई।

जिन्ह गुरु साधु सभा नहिं सेई।।

मानस का अध्ययन करने पर यही कहना पड़ता है कि कैकेयी निंदनीय हैं या वंदनीय इस पर मंतव्य देना कोई आसान नहीं है। क्योंकि कैकेयी की प्रशंसा करने वाला तुलसी का पात्र इतना महान है कि उसे अनुचित नहीं माना जा सकता और वह पात्र है मानस का महानायक राम। दूसरी ओर कैकेयी की निन्दा करने वाले हैं भरत और उनका चरित्र भी इसी तरह चित्रित किया गया है कि हम यह नहीं कह सकते कि वे गलत हैं।

कुल मिलाकर रामायण में परिस्थितियाँ इस तरह रची गई हैं कि तुलसीदास जी ने मूर्तरूप से भले ही कैकेयी को निन्दनीया के रूप में प्रस्तुत किया है लेकिन कैकेयी के दो वरदान के परिणामों पर जाएं तो वे वन्दनीया ही कही जाएंगी। मैथिली शरण गुप्त के शब्दों में स्वयं कैकेयी स्वीकार करती हैं-

क्या कर सकती थी मेरी मंथरा दासी।

मेरा मन ही रह सका ना निज विश्वासी।।

मानस के मर्मज्ञ श्री भैरव रामायनी महाराज ने अपने मानस-तरंग नामक ग्रन्थ में बड़ा ही मार्मिक वर्णन करते हुए कहते हैं कि माता कैकेयी की बड़ी करुण कहानी है। वे महारानी होते हुए भी चौदह वर्ष तक एक ही धोती में रोते हुए सोती रही, न किसी से मिली और न बोली। वैधव्य भोगा और पुत्र वियोग सहन किया। ऐसा त्याग किया रघुवंश की रक्षा के लिए और राम के अवतार को सिद्ध करने के लिए- राम बने नर से नारायण, माता कैकेयी के दुष्कर्म के कारण। किसी संत ने सत्य कहा है- **माता कैकेयी की बड़ी विचित्र है करूण कहानी। जिसने समझा ठीक से उसे, वही परमज्ञानी।**

- निदेशक-धार्मिक पुस्तकालय, हंस विहार मन्दिर, 4/114, एस.एफ.एस. मानसरोवर, अग्रवाल फार्म, जयपुर - 302020 (राज.) मो. 8949344243

विश्वज्योति वर्षः ७३, सं. ७
ISSN 0505-7523
अक्टूबर ,२०२४

ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रथम गवर्नर जनरल लार्ड वारेन हेस्टिंग्स का गीता प्रेम

- डॉ. विद्यानन्द 'ब्रह्मचारी'

यहाँ इतिहास का यह तथ्य उल्लेखनीय है कि सन् १७५७ में नबाब सिराजुददौला की पराजय हुई थी और भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का सूत्रपात हुआ था। उन्हीं दिनों इंग्लैंड से ईस्ट इंडिया कम्पनी का किरानी बनकर राबर्ट क्लाइब आया। वह वीर, साहसी और समय की पहचान रखने वाला था। उसने भारत में अंग्रेजी राज्य की नींव डाली। जब राबर्ट क्लाइव इंग्लैंड चला गया तब कम्पनी ने वारेन हेस्टिंग्स (१७३२-१८१८) को बंगाल का गवर्नर जनरल बनाया। वह सन् १७७४ से १७८५ ई. तक शासक रहा। वह बुद्धिमान, विद्वान साहसी तथा कार्य कुशल था। अपने परिश्रम तथा चुतराई से उसने राज्य को खूब बढ़ाया तथा मजबूत बनाया। वास्तव में अंग्रेजी राज्य को जमाने वाला वही था। उस में स्वदेश प्रेम कूट-कूट कर भरा था। वह विद्या प्रेमी शासक के रूप में विख्यात था। उसने सन् १७७४ ई. से सन् १७८५ ई. तक शासन किया

वारेन हेस्टिंग्स का गीता प्रेम-

यहाँ इस प्रसंग में उल्लेखनीय है कि प्रथम गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग की विवेक बुद्धि और गुण-ग्राहकता की प्रशंसा अनुकरणीय है। वह असीम विद्या प्रेमी था।

१८वीं. सदी के अन्त में ईस्ट इंडिया कम्पनी के एक मुलाजिम चार्ल्स विलिकन्स नाम के थे। वे बड़े विद्या व्यसनी थे। उन्होंने निष्ठा पूर्वक 'महाभारत' ग्रंथ रत्न के कुछ अंश का अनुवाद अंग्रेजी में करके वारेन हेस्टिंग्स को पढ़ने को दिया। गवर्नर साहब को ऐसे काम बहुत पसन्द थे। पुनः विल किन्स ने नबम्बर १७८४ ई. में वारेन हेस्टिंग्स के पास 'श्रीमद्भगवद्गीता' का अनुवाद समालोचना के लिए भेजा। वारेन हेस्टिंग्स अनुवाद देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने एक लम्बा पत्र कम्पनी के कौंसिल के प्रधान मेम्बर नथा नियल स्मिथ साहब को लिखा। उसमें आपने गीता ग्रंथ की बहुत प्रशंसा की और वह सिफारिश की कि वह ग्रंथ कम्पनी के खर्च से छपाकर प्रकाशित किया जाय।

यह सिफारिश मंजूर हो गयी और बिलिकन्स साहब का गीतानुवाद मई १७८५ ई. में छपकर निकल गया। इस अनुवाद के आरम्भ से हेस्टिंग्स का वह पत्र भी छापा गया जिसमें वारेन हेस्टिंग्स ने गीता की समालोचना और उसके गुणों का गान किया था। सच तो यह है कि अच्छी चीज सबको अच्छी लगती है। यह अनुवाद ग्रंथ कलकत्ता (अब कोलकाता) चिड़िया घर के

सामने नेशनल लाइब्रेरी (राष्ट्रीय पुस्तकालय) में सुरक्षित है।

तो हाँ, वारेन हेस्टिंग्स द्वारा लिखित भूमिका को पढ़कर उनकी विवेक बुद्धि और गुण ग्राहकता की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता। उन्होंने गीता की महिमा का खुले दिल से स्वीकार किया है और कहा है कि शायद ही ऐसी अच्छी पुस्तक उस समय की अन्यान्य भाषाओं के ग्रंथ समुदाय में कोई और हो।

उल्लेखनीय है कि गीता भगवान् श्रीकृष्ण की वाणी होने से भगवान् का स्वरूप है। 'गीता' धर्म ग्रंथ का स्पर्श भी गीता पाठ जैसा ही है। गीता के परम प्रेमियों से विनम्र निदेवदन है कि आप प्रतिदिन श्रद्धा-भक्ति से गीता की पुस्तक को प्रणाम कर लिया करें और पंक्तियों पर अँगुली फिरा लिया करें। ग्रंथ कृपा से आत्म श्रद्धा वह तत्व है, जो मनुष्य की गुप्त आध्यात्मिक शक्तियों का द्वार खोल कर आश्चर्य जनक शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक लाभ कराता है। भारत के राष्ट्र जीवन में श्रीमद्भगवद्गीता को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

सौभाग्य से इस लेख के लेखक सन् १९५७ से लेकर आज तक 'गीता का पाठ' अनेक विद्वानों द्वारा गीता भाष्य का संग्रह का प्रेमी है।

'गीता' शब्द ग+ई+त+आ से बना है। इसका 'ग' जीवन को गायन पूजन योग्य बनाना सिखाता है।

जन-जन के मानस मन्दिर में गीता का गान और प्रचार-प्रसार करने वाले वीर भूमि राजस्थान के निवासी परम श्रद्धेय श्री जय दयाल जी गोयन्दका (१८८५-१७-४-१९६५) हिन्दी के परम भागवत देवपुरुष और संत प्रकृति के थे। आप सदैव 'श्रीमद्भगवद्गीता' का पारायण करते रहते थे। आपने उत्तर प्रदेश के गोरखपुर में २९ अप्रैल सन्१९२३ ई. को विधिविधान से 'गीताप्रेस' की स्थापना की। गीता प्रेस के रूप में पूरे संसार में आध्यात्मिक ज्योति प्रज्वलित हुई। आज उसका प्रकाश पूरी मानवता का मार्ग दर्शन कर रहा है।

सौभाग्य से दिनांक ७ जुलाई २०२३ दिन शुक्रवार को प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने गोरखपुर में गीता प्रेस की शताब्दी समारोह के समापन कार्यक्रम में कहा- 'गीता प्रेस सिर्फ संस्थान नहीं जीवंत आस्था है।' गीता प्रेस के प्रबंधक श्री लाल मणि त्रिपाठी जी ने प्रधानमंत्री जी का हृदय से स्वागत सत्कार किया।

'गीता' के परम अनुरागी श्री जयदयाल गोयन्दका जी ने देवभूमि उत्तराखण्ड स्थित संत नगरी ऋषिकेश में पावन गंगा के तट पर स्वर्गाश्रम में अपने 'गीता भवन' का निर्माण करके अपने अनन्य गीताप्रेस का परिचय दिया था। भारतीय संस्कृति के स्तम्भ गंगा और गीता में अगाध श्रद्धा-भक्ति व प्रेम होने के कारण ही आपने इस स्थान को चुना था। आपने अपने इस कर्ममय जीवन में जहाँ अनेक लोकोपयोगी कार्य किए थे वहाँ अपनी अमृतमयी लेखनी के द्वारा भी प्रचुर आध्यात्मिक साहित्य का सृजन किया था। आप के द्वारा भी प्रचुर आध्यात्मिक साहित्य का सृजन किया था। आपके द्वारा धार्मिक मासिक पत्रिका 'कल्याण' का भी सूत्रपात किया था। इस पत्रिका

के नित्य लीलालीन भाई जी श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार थे। संस्थापक के रूप में श्री जयदयाल गोयन्दका की कीर्तिगाथा चतुर्दिक परिव्याप्त है।

तभी तो कहा जाता है कि परमात्मा जिससे कुछ कार्य कराना चाहता है, उसके अन्तःकरण में बैठकर वहीं प्रेरणा देता रहता है और तदनुकूल परिस्थितियाँ भी बनाता रहता है।

'गीता' के संदर्भ में उल्लेखनीय है कि देवभूमि उत्तराखण्ड के अन्तर्गत जिला पौड़ी गढ़वाल पोस्ट-स्वर्गाश्रम ऋषिकेश में गीता आश्रम है। वर्तमान में श्री गीता आश्रम इण्टरनेशनल चैरिटेबल ट्रस्ट के आदि संस्थापक संचालक द्वारा गीता सन्देश मासिक पत्रिका का सन् १९५६ से प्रकाशन जारी है।

महर्षि वेदव्यास रचित 'महाभारत' के भीष्म पर्व के पच्चीसवें अध्याय से लेकर ब्यालीसवें अध्याय तक के कुल अठारह अध्यायों के सात सौ श्लोकों के अन्तर्गत वेदोपनिषद के तत्व ज्ञान से परिपूर्ण है। कुरुक्षेत्र पुण्यभूमि में योगीराज भगवान श्रीकृष्ण एवं महान् जिज्ञासु सव्यसाची (अर्जुन) के आकर्षक संवादों द्वारा किया, वह श्रीमद्भगवद्गीता' के नाम से विश्व विख्यात है।

सच तो यह है कि श्रीमद्भगवद्गीता हिन्दू शास्त्रों का मुकुटमणि है। गीता के अलौकिक गाने पर देश-विदेशों के चिन्तक रीझे हैं। एक जर्मन विद्वान ने तो यहाँ तक कह दिया -"The Geeta is the most beautiful, perhaps the only true philosophical song existing in any known language."

वास्तव में गीता तो नित्य की चीज है, आचरण व चीज है।

इस जगत विख्यात आध्यात्मिक ग्रंथ गीता पर अनेक विद्वानों ने भिन्न-भिन्न भाषाओं में, भिन्न-भिन्न दृष्टि कोणों से विद्वता पूर्ण ग्रंथ की रचना की लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक द्वारा कारावास में रचित 'गीता रहस्य' के बारे में योगिराज अरविन्द ने अपनी अमृतमयी लेखनी से उद्गार व्यक्त करते हुए लिखा है- "गीता रहस्य' की विषय वस्तु अर्थात् भगवद्गीता यह भारतीय आध्यात्मिकता का सुमधुर फल है।

गीता कहती है कि इतने कच्चे मत बनो कि सुख-दुःख तुम्हें आसानी से दबा लें।

तो हाँ, गीता के नौवें अध्याय में ९/२२ में भगवान् का उद्घोष है- 'तेषां नित्याभियुक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम् अर्थात्- सदा मुझ में मग्र रहने वाले भक्तों के क्षेम कुशल का बोझ मैं उठा लेता हूँ।

सचमुच यह गीता ग्रंथ रत्न संसार में वैकुण्ठ धाम है। अध्यात्म ज्ञान पराकाष्ठा के कारण ही गीता को सर्वशास्त्र शिरोमणि कहा गया है।

गीता का 'कर्मयोग' संसार के लिए एक अपूर्व संदेश है।

अन्त में गीता की समन्वय शक्ति ने विश्व के सभी धर्माचार्यों एवं अध्यात्मवादियों के हृदय सरोवर में अपना आदरणीय स्थान बना लिया है।

- 'रामतीर्थ कुंज' ग्राम+पो. - राँकोडीह, वाया - कोशी कॉलेज, जिला खगड़िया- 851205 (बिहार)

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

पुरुषार्थचतुष्टय में धर्म विवेचन

- अनिल कुमार

संस्कृत साहित्य में कर्म प्रधान के लिए चार पुरुषार्थ बताए गए है धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। आज वर्तमान परिषेक्ष्य में धर्म की महत्ती आवश्यकता है। धर्म विवेचन विविध आधार पर किया जा रहा है। धर्म शब्द धृञ् धारणे धातु से बना है। धरतीति धर्म अथवा येन एतद् धार्यते स धर्मः अर्थात जिसके द्वारा धारण किया जाता है अथवा जिसके द्वारा सम्पूर्ण संसार के सुरक्षा की भावना अभिभूत हो उसी को धर्म कहते है। भारतीय साहित्य में धर्म शब्द की सार्थकता सिद्ध होती है। जो मनुष्य को नीच योनी में गिरने से रक्षा करें वह धर्म है। जो मनुष्य द्रवारा धारण किया जाता है वह धर्म है।

'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः'[1]

जिससे दैहिक और आध्यात्मिक उन्नति हो वह धर्म है। दैहिक उन्नति से अभिप्राय भौति सुखे-सुविधायें व्यक्तिगत, पारिवाकि, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी प्रकार की उन्नतियाँ आती है।

आध्यात्मिक उन्नति से अभिप्राय आत्मनोन्मुख से है। आत्म उन्नति पञ्चविकारों से शुद्धता को प्राप्त कर पाँच कर्मेन्द्रिय पाँच ज्ञानेन्द्रियों के वास्तविक सारथि मन को श्रेष्ठ कर्मो की तरफ प्रवृत्त करना है। इस से दोनों उन्नतियों का समाविष्ट रूप बनता है।

'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः'[2]

जिस प्रेरणा के द्रवारा मनुष्य अच्छे कार्यों में प्रवृत्त होते हैं वह धर्म है। जिससे सभी जीवों का भला हो और संसार की उन्नति का पथ प्रदर्शित हो वह धर्म है।

संगच्छध्व संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते।।[3]

ऋग्वेद काल से ही हमारे समृद्ध साहित्य में सम्पूर्ण मनुष्य जाति को उपदेश दिया है कि मिलकर चलो, परस्पर मिलकर बात करो अर्थात तुम सभी का विचार एक जैसा हो तुम्हारे चित्त एक समान होकर ज्ञान प्राप्त करें। जिस प्रकार हमारे ऋषि मुनि प्रभु को जानते हुए उपासना करते आए है वैसे ही तुम भी करो।

''समानो मन्त्रः समीतिः समानी समानं मनः स चित्तमेषाम्''[4]

हमारा मार्गदर्शक मंत्र एक और समान हो, हमारी सभा एक और समान हो, हमारा मन हम सबके लिए सोच और उद्देश्य में एक हो। मैं

तुम सभी को विचार, लक्ष्य और नीति के लिए एक ही मन्त्र के लिए प्रतिबद्ध करता हूँ और मैं तुम सभी को जीवन और कार्य के लिए समान साधन और तरीके प्रदान करता हूँ।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।[5]

हे मनुष्यों! हमारा संकल्प समान हो, हमारा हृदय परस्पर मिले हुए हो, हमारा मन समान हो, जिससे हम लोग परस्पर मिलकर एक होकर रहें।

''मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे''[6]

सभी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें। मैं सभी को मित्र की दृष्टि से देखुँ। हम सभी एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें। अर्थात् विश्व के समस्त प्राणियों से हम आत्मवत् व्यवहार करें। प्राणी मात्र के प्रति करुणा ही धर्म की संसिद्धि का मूल है।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विधा सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।[7]

वेद साहित्य में धर्म का जो पादुर्भाव है उसमें सम्पूर्ण जागत की भलाई के लिए धर्म के कुछ लक्षण बताए है।

धृति-

धृति का मतलब होता है धैर्य, कोई भी अच्छा काम करते समय मन के अन्दर साहस रखना कि मैं इस काम को पूरा करके ही छोड़ना। मन में विश्वास तथा धैर्य के साथ कार्य निरन्तर करते रहना चाहिए।

दम-

जिस प्रकार राजा अपने शत्रुओं को दमन करता है वैसे ही जीव को चाहिए कि अपने मन में उठ रहे गलत भावना को रोककर मन को हमेशा धर्म की ओर अग्रसित करना।

अस्तेयम्-

अस्तेयम् चोरी न करना। बिना आज्ञा के हम किसी की वस्तु को न लें। वेद विरुद्ध उपदेश से पर पदार्थ ग्रहण करना चोरी है। उसको हमेशा के लिए छोड़ देना चाहिए। मन, वचन, कर्म से कभी की वस्तु लेना स्तेय है और न लेना अस्तेय है।

शौच-

शौच का अर्थ होता है पवित्रता शुद्ध परिष्कारादि। शौच दो प्रकार का होता है। आभ्यान्तर शुद्धि या वाह्य शुद्धि।

इन्द्रियनिग्रह-

इन्द्रिय (पंचज्ञानेन्द्रिय व कर्मेन्द्रिय) को अधर्म आचारणों से रोक के इन्द्रियों को सदा धर्म में लगावें जैसे चुम्बुक लोहे को अपनी ओर खींच लेता है वैसे ही रूप, रस गन्धादि विषय इन्द्रिय को अपनी ओर खींचते रहते है। विषयों की ओर इन्द्रियों को न जाने देना ही इन्द्रिय निग्रह है।

धी-

धी मतलब बुद्धि 'बुद्धि यस्य बलं तस्य' सर्वदा बुद्धि को बढाना, जिस प्रकार चाकू को धार

देने से वह पहले से और ज्यादा मसृण हो जाती है ठीक उसी प्रकार अपनी बुद्धि की प्रखरता के लिए यथा सम्भव प्रयास करते रहना चाहिए।

विद्या- विद्या दो प्रकार की होती है। परा विद्या और अपरा। 'परा' विद्या वह होती है जो हमें स्वजीविका चलाने में काम आती है। भौतिक विज्ञान, इतिहास, गणित, अंग्रेजी भूगोल आदि अपरा विद्या वेद वेदाङ्ग की शिक्षा जिससे पर लोक सुधर जाए धरती से लेकर ईश्वर पर्यन्त यथार्थ ज्ञान और उनसे यथायोग्य उपकार लेना विद्या है।

सत्य-

सच बोलना चाहिए, कैसा सच प्रिय मधुर हो। मन में जैसा सोचा वाणी में वैसा बोलना, जैसा हमने देखा ठीक वैसा ही बोलना सत्य है।

अक्रोधः-

क्रोध आदि दोषों को छोड़कर शान्त्यादि गुणों का ग्रहण करना धर्म का लक्षण है।

मनु महाराज द्वारा धर्म के दश लक्षणों को अपनाकर आप अपने जीवन को सुखमय बना सकते है।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहु साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्।।[८]

वेद स्मृति धर्मशास्त्र, सत्पुरुषों का आचार और अपनी आत्मा को जो प्रिय लगे अर्थात् आत्मा जिसे चाहती है जिससे किसी की क्षति नहीं अपितु सब की भलाई हो ऐसी इच्छा होनी चाहिए जैसे कि सत्यभाषण-ये चार धर्म लक्षण कहे गए हैं अर्थात् इन्हीं से धर्माधर्म का ज्ञान होता है।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतम ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः।।[९]

मनुस्मृति के प्रणेता महान् राजा मनु कहते है कि मनुष्य को सदैव सत्य बोलना चाहिए। लेकिन वह सत्य प्रिय हो झूठ ना बोले और कभी कोई अप्रिय बात न कहें। अतः उपर्युक्त वचन का पालन करना ही शाश्वत धर्म है।

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह।
दानं दमो दया क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम्।।[१०]

अहिंसा, सत्य, चोरी न करना (अस्तेय), शौच (स्वच्छता) इन्द्रिय-निग्रह (इन्द्रियों को वश में रखना) दान संयम (दम) दया एवं शान्ति-ये धर्म के नौ लक्षण है।

श्रुति स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
सम्यक् संकल्पजः कामो धम्रमूलममिदं स्मृतम्।।[११]

अर्थात् जो श्रुति (वेद) में कहा गया हो तथा स्मृतिकार ऋषियों ने जिसे कहा हो और लोगों ने जिसका अनुसरण भी किया हो तथा जो समझने से आत्मा को कल्याणकारी एवं प्रिय भी प्रतीत होता हो ऐसा यह चार प्रकार का धर्म का साक्षात् लक्षण है। इस तरह हम इन लक्षणों की कसौटी पर कसकर अपना आचार विचार निर्धारित कर सकते है।

इज्याध्ययनदानादिः तपः सत्यं क्षमा दया।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः।।[१२]

यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और लोभ विमुखता-धर्म के ये आठ मार्ग बताए गए है। इन पर चलने वाला व्यक्ति ही वास्तविक धर्मात्मा है।

धर्मेण गमनमूर्ध्वं गमनमधस्ताद् भवत्यधर्मेण।
ज्ञानेन चापवर्गो विपर्यादिष्यते बन्ध।।[१३]

साँख्यकारिका में ईश्वरकृष्ण द्रवारा प्रतिपादित धर्म का लाभार्थे कहते है। मनुष्यों को धर्म का पालन करने से स्वर्गादि लोकों में गमन होता है अर्थात् स्वर्गलोक या मोक्ष की प्राप्ति होती है। धर्म के विपरीत जो मनुष्य अधर्म का आचरण करते है। उन्हें अधोलोक, नरक पाताल आदि निकृष्ट योनी प्राप्त होती है। ज्ञान से अपवर्ग यानि सारे बन्धनों से छूट जाते है और अज्ञान के बन्धनों में फसते चले जाते हैं।

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः।।[१४]

यह जो हमारी भौतिक देह है वह अनित्य है अर्थात् शरीर अनित्य है तथा मान सम्मान धन-सम्पत्ति सर्वदा स्थिर अथवा स्थायी नहीं है। एक दिन नाश हो जाता है। मृत्यु एक निश्चित है जो होनी ही है। इसलिए मानव को धर्म का संग्रह अवश्य करना चाहिए। जिससे वो अपना परलोक सुधार सकें। क्योंकि -

आहार निद्रा भय मैथुनं च
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषः
धर्मेण हीनाः पशुभि समानाः।।[१५]

मनुष्यों और पशुओं में प्राय सभी क्रियाएं समान पायी जाती है। जैसे आहार, निद्रा, भय, और मैथुन मनुष्य और पशु दोनों ही के स्वभाविक आवश्यकताएँ है। जैसे मनुष्य खाद्य ग्रहण करते हैं, पशु भी खाद्य ग्रहण करते है। मनुष्य को निद्रा आता है, पशुओं को भी निद्रा आती है। मनुष्य भयभीत होते है तथा मैथुन भी करते हैं ठीक इसी प्रकार पशु भी भयभीत होता है और मैथुन करता है। परन्तु मनुष्य और पशुओं में एक ही अन्तर है वह है धर्म। पशु धर्म का आचरण नहीं करता है। जो मनुष्य धर्म का आचरण नहीं करता वह पशु के समान है। यदि इन चारों को ध्यान में रखें तो मनुष्य और पशु समान है। केवल धर्म ही मनुष्य को पशु से श्रेष्ठ बनाता है। अतः धर्म से हीन मनुष्य पशु के समान है। मानव धर्म का पालन करते हुए अपने जीवन को सुखमय बनाए। ऐसी कल्पना महर्षियों ने दी है। मनीषियों का मत है कि 'धर्मो रक्षति रक्षितः' जो धर्म की रक्षा करेगा धर्म उसकी रक्षा करेगा। अतः प्राणी मात्र का यह परम कर्तव्य है कि आत्मोन्नति तथा अध्यात्मिक उन्नति के लिए धर्म के उपरोक्त विवेचन को अंगीकार करते हुए 'वसुधैव कटुम्भकम्' की भावना सार्थक करते हुए धर्म की प्रासंङ्गिकता आम जन मानस पटल

का भान करते हुए स्व से प्रारम्भ करते हुए कुटुम्भजन स्थान, परिवेश के जागरण का हेतु बने और धर्म के कंटकीय मार्ग को दुष्कर से सुगम बनाने हेतु कृत संकल्प हो ताकि सनातन संस्कृति का भान चिर निरन्तर बना रहे और विश्वकल्याण की भावना बनी रहे।

सर्वे भवन्तु सुखिनः
सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा
कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।[१६]

---

१. वैशेषिक दर्शन - १.१.२
२. पूर्वमीमांसा - १.१.२
३. ऋग्वेद - १०.१९१.२
४. ऋग्वेद - १०.१९१.३
५. ऋग्वेद- १०.१९१.४
६. ऋग्वेद- ३६.१८३
७. ऋग्वेद - ६.९
८. मनुस्मृति- २.१२
९. मनुस्मृति- ४.१३८
१०. याज्ञवल्क्य स्मृति - १.१२२
११. याज्ञवल्क्य स्मृति - १.७
१२. विदुरनीति- ३.५७
१३. सांख्यकारिका- ४९ कारिका
१४. चाणक्य नीति शाख संप्रदाय - ५८
१५. हितोपदेश मित्र लाभ - २५

- वी.वी.बी.आई. एस. एण्ड आई. एस., पंजाब विश्वविद्यालय,
साधु आश्रम, होशियारपुर।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

प्राण-एक शास्त्रीय विवेचन
(उपनिषदो के विशिष्ट सन्दर्भ में)

- सौरभ

सारांश-

प्राण जिसकी सत्ता जीवन है, जिसका अभाव मृत्यु है। जो सारे संसार का स्वामी है अर्थात् जिसमें सारा संसार प्रतिष्ठित है। जो सृष्टिकर्ता/विश्वजन्मन्/गतिदाता है। जिस पर भूत/वर्तमान/भविष्य त्रिविध कालों का अस्तित्व निर्भर है, उस प्राण का उपनिषदों के विशिष्ट सन्दर्भ में अवक्र शास्त्रीय निरूपण अभिप्रेत है। (कूटशब्द : प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, स्वरूप, उपनिषद्) ।

प्राण - प्र + अन + अच्

यह एक विश्व व्यापिनी ऊर्जा है, जिसका समष्टि रूप चराचर जगत् को धारण करता है तथा व्यष्टि रूप प्रत्येक जीव (मनुष्य कीट - पतंग आदि) में व्याप्त है।

महत्व-

तैतिरीय उपनिषद की भृगुवल्ली के तृतीय अनुवाक के प्रथम गद्यांशानुसार प्राण ही ब्रह्म है। क्योंकि प्राण से ही समस्त प्राणी उत्पन्न होते है अर्थात् एक जीवित प्राण से उसी के सदृश दूसरा प्राणी उत्पन्न होता हुआ प्रत्यक्ष देखा जाता हैं तथा उत्पन्न होकर सभी प्राण से ही जीते है अर्थात् यदि स्वास का आना-जाना बन्द हो जाए, यदि प्राण द्वारा अन्न ग्रहण न किया जाए तथा अन्न का रस समस्त शरीर मे न पहुंचाया जाए तो कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता है और अन्त में मरने के बाद सभी प्राणी प्राण में ही प्रविष्ट हो जाते है।

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्।
प्राणद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
प्राणेन जातानि जीवन्ति।
प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।[1]

तैत्तिरीय उपनिषद की ब्रह्मानन्दवल्ली के तृतीय अनुवाक के प्रथम गद्यांशनुसार जितने भी देवता, मनुष्य, पशु आदि शरीरधारी प्राणी हैं, वे सब प्राण का अनुसरण करके ही चेष्टा करते हैं अर्थात् प्राण के सहारे ही जीवित रहते हैं, क्योंकि प्राण ही सब प्राणियों की आयु-जीवन है।

प्राणं देवा अनु प्राणन्ति।
मनुष्याः पशवश्च ये।
प्राणो हि भूतानामायुः।[2]

बृहदारण्यकोपनिषद् के प्रथम अध्याय के तृतीय ब्राह्मण के १९वें गद्यांशानुसार प्राण

अयास्य (मुख के अन्दर होने के कारण) आंगिरस (अंगो का रस/सार) है क्योंकि जिस किसी भी अवशोषित अंग यानि शरीर के अवयव से प्राण उत्क्रमण कर जाता है, वह अंग वहाँ ही शुष्क/नीरस हो जाता है।

सोऽयास्य आङ्गिरसोऽङ्गानां हि रसः प्राणो वा अङ्गानां रसः प्राणो हि वा अङ्गानां रसस्तस्माद्यस्मात्कस्माच्चाङ्गात्प्राण उत्क्रमति तदेव तच्छुष्यत्येष हि वा अङ्गानां रसः।।[3]

छान्दोग्योपनिषद् के प्रथम अध्याय के तृतीय खण्ड के छठे गद्य भाग पर लिखित शांकर भाष्य के अनुसार प्राण ही उत् है अर्थात् सब लोग प्राण से ही उठते हैं, क्योंकि प्राणहीन की शिथिलता देखी जाती है।

प्राण एव उत्, प्राणेन ह्युत्तिष्ठति
सर्वो - ऽप्राण स्यावसाददर्शनात्।[4]

अतः कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् के तृतीय अध्याय के द्वितीय गद्यांशानुसार जब तक इस शरीर में प्राण रहता है, तब तक ही आयु/जीवन है।

यावत् हि अस्मिन् शरीरे
प्राणो वसति तावत् आयुः।[5]

उत्पत्ति-

मुण्डकोपनिषद के द्वितीय मण्डक के प्रथम खण्ड के तृतीय मन्त्रांशानुसार अज, अप्राण अमना परमेश्वर से प्राण उत्पन्न होता है।

एतस्माज्जायते प्राणो।[6]

प्रश्न उपनिषद् के तृतीय प्रश्न के तृतीय गद्यांशानुसार जिस प्रकार मनुष्य शरीर से उसकी छाया उत्पन्न होती है, उसी प्रकार परमात्मा से प्राण उत्पन्न होता है। अतः यह परमात्मा के ही आश्रित है।

आत्मन एष प्राणो जायते। यथा एषा पुरुषे छाया एतस्मिन् एतत् आततम्।[7]

आगमन-

प्रश्न उपनिषद के तृतीय प्रश्न के तृतीय गद्यांशानुसार मन द्वारा किए गए संकल्प से यह (प्राण) शरीर मे प्रवेश करता है अर्थात् मरते समय प्राणी के मन में उसके कर्मानुसार जैसा संकल्प होता है, उसे वैसा ही शरीर मिलता है। अतः प्राण का शरीर में प्रवेश मन के संकल्प से ही होता है। **मनोकृतेन आयाति अस्मिन् शरीरे।**[8]

विभाजन-

मैत्रायणी उपनिषद के द्वितीय प्रपाठक के छठे गद्य-भागानुसार सर्वप्रथम उत्पन्न प्रजापति ने सृष्टि निर्माण हेतु प्रजा उत्पन्न की तथा उन्हे चेतना प्रदान करने हेतु स्वयं को वायु के समान बनाकर उन्होंने प्राणियों में प्रवेश किया, जिसके कारण एक ही प्राण/प्रजापति के पांच भेद हो गए, जो प्राण / अपान / समान / उदान / व्यान के रूप में विख्यात हुए।

प्रजापतिर्वा एषोऽग्रेऽतिष्ठत्स नारमतैकः स आत्मनमभिध्यायद्बह्वीः प्रजा असृजन्त अस्यैवात्मप्रबुद्धा अप्राणा स्थाणुरिव तिष्ठमाना अपश्यत्स नारमत सोऽमन्यतैतासं

प्रतिबोधनायभ्यान्तरं प्राविशानीत्यथ स वायुमिवात्मानं कृत्वाभ्यन्तरं प्राविशत्स एको नाविशत्स पञ्चधात्मानं प्रविभज्योच्यते यः प्राणोऽपानः समान उदानो व्यान इति।।[9]

स्थान ग्रहण–

प्रश्नोपनिषद के तृतीय प्रश्न के चतुर्थ गद्यांशानुसार जिस प्रकार सम्राट भिन्न–भिन्न ग्राम, मण्डल और जनपद आदि में पृथक–पृथक अधिकारियों की नियुक्ति करता है और उनका कार्य विभक्त देता है, उसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ प्राण भी अपने अंगस्वरूप अपान / समान / उदान / व्यान प्राणों को शरीर के प्रथक पृथक स्थानों में प्रथक–पृथक कार्यों के लिए नियुक्त कर देता है।

यथा सम्राट् एव अधिकृतान् विनियुङ्क्ते एतान् ग्रामान् एतान् ग्रामान् अधितिष्ठस्व इति एवम् एव एषः प्राणः इतरान् प्राणान् पृथक् पृथक् एवं संनिधन्ते।[10]

स्थिति–

प्राण – प्र + अन + अच्

छान्दोग्योपनिषद् के प्रथम अध्याय के तृतीय खण्ड के तृतीय गद्य भाग पर लिखित शांकर भाष्य के अनुसार पुरुष जो प्राणन करता है अर्थात् मुख और नासिका द्वारा वायु को बाहर निकालता है, वह वायु प्राण नामक वृत्ति विशेष है।

यद्वै पुरुषः प्राणिति मुखनासिकाभ्यां वायुं बहिर्निःसारयति, स प्राणाख्यो वायोर्वृत्तिविशेषः।[11]

छान्दोग्योपनिषद के तृतीय अध्याय के त्रयोदश खण्ड के प्रथम गद्य भाग पर लिखित शांकर भाष्य के अनुसार स्वर्गलोक के भवनरूप उस इस हृदय– का जो प्राङ्सुषि है अर्थात् पूर्वाभिमुख हृदय का जो पूर्वदिशावर्ती छिद्र यानी द्वार है वह प्राण है। जो उस हृदय में ही स्थित है और उसी के द्वारा संचार करता है वह वायु विशेष 'प्राक् अनिति' इस व्युत्पन्ति के अनुसार प्राण कहलाता है।

तस्य स्वर्गलोकभवनस्य हृदयस्यास्य यः प्राङ् सुषिः पूर्वाभिमुखस्य प्राग्गतं यच्छिद्रं द्वारं स प्राणः, तत्स्थस्तेन द्वारेण यः संचरति वायुविशेषः स प्रागनितीति प्राणः।[12]

प्रश्नोपनिषद के तृतीय प्रश्न के पांचवे गद्यांशानुसार प्राण स्वयं मुख और नासिका द्वारा विचरता हुआ नेत्र और श्रोत्र में स्थित रहता है।

चक्षुःश्रोते मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते।[13]

छान्दोग्योपनिषद के पंचम अध्याय के प्रथम मंत्राशानुसार प्राण ही ज्येष्ठ है।

प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च।[14]

अपान – अप + अन् + अच्

छान्दोग्योपनिषद के प्रथम अध्याय के तृतीय खण्ड के तृतीय गद्य भाग पर लिखित शांकर भाष्य के अनुसार पुरुष जो अपश्वास करता है अर्थात् उन मुख और नासिका के ही द्वारा वायु को भीतर खीचता है वह वायु अपान नामक वृत्ति विशेष है।

यदपानित्यपश्वसिति ताभ्यामेवान्तराकर्षति

वायुः सोऽपानोऽपानाख्या वृत्तिः।[15]

छान्दोग्योपनिषद के तृतीय अध्याय के त्रयोदश खण्ड के तृतीय गद्य भाग पर लिखित शांकर भाष्य के अनुसार स्वर्गलोक के भवनरूप उस इस हृदय का जो प्रत्यङ्सुषि अर्थात पश्चिमाभिमुख हृदय का जो पश्चिम दिशावर्ती छिद्र यानी द्वार है वह अपान है वह मल मूत्रादि को दूर करता हुआ नीचे की ओर ले जाता है। अतः अपान कहलाता है।

योऽस्य प्रत्यङ् सुषिः पश्चिमस्तत्स्थो वायुविशेषः स मूत्रपुरीषाद्यपनयन्नधोऽनि-तीत्यपानः।[16]

प्रश्नोपनिषद के तृतीय प्रश्न के पांचवे गद्यांशानुसार प्राण गुदा और उपस्थ में अपान को स्थापित करता है। - **पायूपस्थेऽपानं**[17]

व्यान - वि + आ + अन + अच्

छान्दोग्योपनिषद के प्रथम अध्याय के तृतीय खण्ड के तृतीय गद्य भाग पर लिखित शांकर भाष्य के अनुसार उन उपर्युक्त लक्षण वाले प्राण और अपान की जो सन्धि है अर्थात उनके बीच का जो वृत्ति विशेष है, वह व्यान है।

य उक्तलक्षणयोः प्राणापानयोः सन्धिस्त-योरन्तरा वृत्तिविशेषःस व्यान।[18]

छान्दोग्योपनिषद के तृतीय अध्याय के त्रयोदश खण्ड के द्वितीय गद्य-भाग पर लिखित शांकर भाष्य के अनुसार स्वर्गलोक के भवनरूप उस इस हृदय- का जो दक्षिण छिद्र है, उसमें स्थित जो वायु विशेष है वह वीर्यवान् कर्म करता हुआ गमन करता है या प्राण और अपान से विरोध करके अथवा नाना प्रकार से गमन करता है, इस कारण व्यान कहलाता है।- **योऽस्य दक्षिणः सुषिस्ततस्थो वायुविशेषः स वीर्यवत्कर्म कुर्वन्विगृह्य वा प्राणापानो, नाना वानितीति व्यानः**[19]

प्रश्नोपनिषद के तृतीय प्रश्न के छठे गद्यांशानुसार इस शरीर में जो हृदय प्रदेश है, जो जीवात्मा का निवास स्थान है, उसमे एक सौ मूलभूत नाड़ियां है, उसमे से प्रत्येक नाडी की एक एक सौ शाखा नाडियां है और प्रत्येक शाखा नाड़ी की बहत्तर बहत्तर हजार प्रतिशाखा नाड़ियां हैं। इन सब में व्यान वायु विचरण करता है।

हृदि ह्येष आत्मा। अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्या द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्त्यासु व्यान-श्चरति।।[20]

छान्दोग्योपनिषद के प्रथम अध्याय के तृतीय खण्ड के तृतीय गद्य भाग पर लिखित शांकर भाष्य के अनुसार प्राणादि वृत्तियों की अपेक्षा व्यान विशिष्ट है।

अतो विशिष्टो व्यानः प्राणादिवृत्तिभ्यः।[21]

उदान + उत् + आङ् + अन् + अच्

छान्दोग्योपनिषद के तृतीय अध्याय के त्रयोदश खण्ड के पंचम गद्य भाग पर लिखित शांकर भाष्य के अनुसार स्वर्गलोक के भवनरूप

उस इस हृदय-का जो ऊर्ध्व छिद्र है वह उदान है। पैर के तलुए से लेकर ऊपर की ओर उत्क्रमण करने के कारण और उत्कर्ष के लिए कर्म करता हुआ चेष्टा करता है। अत: वह उदान है।

योऽस्योर्ध्वः सुषिः स उदान आ पादतला-दारभ्योर्ध्वमुत्क्रमणादुत्कर्षार्थं च कर्म कुर्वन्न-नितीत्युदानः।[22]

प्रश्नोपनिषद के तृतीय के सातवे गद्यांशनुसार उपर्युक्त बहत्तर करोड़ नाडियों से भिन्न एक नाडी और है, जिसको सुषुम्ना कहते है, जो हृदय से निकलकर ऊपर मस्तक में गई है। उसके द्वारा उदान वायु शरीर में ऊपर की ओर विचरण करता है।

अथैकयोर्ध्व उदानः।[23]

समान - सम् + अन् +अण्

छान्दोग्योपनिषद के तृतीय अध्याय के त्रयोदश खण्ड के चतुर्थ गद्य भाग पर लिखित शांकर भाष्य के अनुसार स्वर्गलोक के भवनरूप उस इस हृदय का जो उदङ्सुषिः अर्थात् उत्तराभिमुख हृदय का जो उत्तवर्ती छिद्र यानी द्वार है, उसमें स्थित हुआ जो वायु विशेष है, वह खाप-पिये अन्न-जल को समान रूप से सम्पूर्ण शरीर में ले जाता है, अत: समान है।

योऽस्योदङ् सुषिः उदग्गतः सुषिः तत्स्थो वायुविशेषः सोऽशितपीते समं नयतीति समानः।[24]

प्रश्नोपनिषद के तृतीय प्रश्न के पाँचवे गद्यांशानुसार प्राण शरीर के मध्य भाग अर्थात नाभि में समान को रखता है और यह समान वायु ही खाम हुए अन्न को समस्त शरीर में यथायोग्य सम्भाव से पहुंचाती है।

मध्ये तु समानः एष ह्येतद्धुतमन्नं समं नयति।[25]

चक्र-

प्रश्नोपनिषद के तृतीय के सातवें गद्यांशानुसार जो मनुष्य पुण्यशील होता है, जिसके शुभ कर्मों के भाग उदय हो जाते है, उसे उदान वायु अन्य सब प्राणों तथा इन्द्रियों सहित वर्तमान शरीर से निकालकर पुण्य लोको में अर्थात् स्वर्गादि उच्च लोको में ले जाता है। पापकर्मों से युक्त मनुष्य को शूकर-कूकर आदि पाप योनियों में और रौरवादि नरको में ले जाता है तथा जो पाप और पुण्य दोनों प्रकार के कर्मों का मिश्रित फल भोगने के लिए अभिमुख हुए रहते हैं, उनको मनुष्य शरीर मे ले जाता है।

पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन पापमु-भाभ्यामेव मनुष्यलोकम्।[26]

निष्कर्ष-

प्रश्नोपनिषद के तृतीय के बारहवें मंत्रानुसार जो मनुष्य प्राण की उत्पति, आगम, स्थान, व्यापकता एवम् बाह्य और आध्यात्मिक भेदों को जान लेता है, वह अमृत का अनुभव करता है अर्थात् जो मनुष्य प्राण की उत्पत्ति को अर्थात् यह जिससे और जिस प्रकार उत्पन्न होता है- इस रहस्य को जानता है, शरीर में उसके प्रवेश करने

की प्रक्रिया का तथा इसकी व्यापकता का ज्ञान रखता है तथा जो प्राण की स्थिति को अर्थात् बाहर और भीतर कहाँ-कहाँ वह रहता है, इस रहस्य को तथा इसके बाहरी और भीतरी अर्थात् आधिभौतिक और आध्यात्मिक पाँचों भेदों के रहस्य को भलीभाँति समझ लेता है, वह अमृतस्वरूप परमानन्दमय परब्रह्म परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है तथा उस आनन्दमय के संयोग-सुख का निरन्तर अनुभव करता है-

उत्पत्तिमायति स्थानं विभुत्वं चैव पञ्चधा। अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञायामृतमश्नुत इति।[२७]

शब्द संक्षेपिका -

१. तैत्तिरी. - तैत्तिरीयकोपनिषत् २. बृहदा. - बृहदारण्यकोपनिषत् ३. छान्दो. - छान्दोग्योपनिषत्
४. कौषी. - कौषीतकिब्रह्मणोपनिषद् ५. मुण्डक. - मुण्डकोपनिषत् ६. प्रश्न- - प्रश्नोपनिषत्
७. मैत्रा. - मैत्रायण्युपनिषत्

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

१. तैत्तिरीयोपनिषद् (ईशादि नौ उपनिषद्), गीताप्रेस गौरखपुर (सं. - २०७७)
२. बृहदाण्यकोपनिषद् (शाङ्करभाष्यसहित), गीता प्रेस गौरखपुर (सं. - २०९८)
३. छान्दोग्योपनिषद् (शाङ्करभाष्यसहित), गीताप्रेस गौरखपुर (सं. - २०९२)
४. कौषीतकिब्रह्मणोपनिषद् (१०८ उपनिषद् - ब्रह्मविद्या खण्ड), सम्पादक : पं. श्री राम शर्मा आचार्य, युग निर्माण योजना प्रकाशन मथुरा (वर्ष २००९)
५. मुण्डकोपनिषद्, व्याख्याकार : डा. जियालाल कम्बोज, विद्यानिधि प्रकाशन दिल्ली (संस्करण - २०१७)
६. प्रश्नोपनिषद् (ईशादि नौ उपनिषद्), गीताप्रेस गौरखपुर (सं. - २०७७)
७. उपनिषत्सञ्चयनम् द्वितीय खण्ड (ब्रह्मोपनिषदाऽऽरभ्य मुद्गलोपनिषत्पर्यन्तम्), अनुवादक : आचार्य केशवलाल वि. शास्त्री चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली (संस्करण - २०१५)

सन्दर्भ-

१. तैत्तिरी. ३/३/१, पृठ, ४०७ २. तैत्तिरी. २/३/१, पृठ, ३७७ ३. बृहदा. १/३/१९, पृठ, १३६
४. छन्दो. १/३/६, पृठ, ७१ ५. कौषी. ३/२, पृठ, ७८ ६. मुण्डक. २/१/३, पृष्ठ ७३
७. प्रश्न. ३/३, पृष्ठ १९५ ८. प्रश्न. ३/३, पृष्ठ १९५ ९. मैत्रा. २/६, पृष्ठ ८४
१०. प्रश्न. ३/४, पृष्ठ १९६ ११. छान्दो, १/३/३, पृष्ठ ६७ १२. छान्दो, ३/१३/१, पृष्ठ २९०
१३. प्रश्न., ३/५, पृष्ठ १९६ १४. छान्दो, ५/१/१, पृष्ठ ४४३ १५. छान्दो, १/३/३, पृष्ठ ६७
१६. छान्दो, १/१३/३, पृष्ठ २९३ १७. प्रश्न, ३/५, पृष्ठ १९६ १८. छान्दो, १/३/३, पृष्ठ ६८
१९. छान्दो, १/१३/२, पृष्ठ २९२ २०. प्रश्न, ३/६, पृष्ठ १९७ २१. छान्दो, १/३/३, पृष्ठ ७०
२२. छान्दो, १/१३/५, पृष्ठ २९५ २३. प्रश्न, ३/७, पृष्ठ १९८ २४. छान्दो, ३/१४, पृष्ठ २९४
२५. प्रश्न, ३/५, पृष्ठ १९६ २६. प्रश्न, ३/७, पृष्ठ १९८ २७. प्रश्न, ३/१२, पृष्ठ २०२

- स्नातकोतर छात्र, संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

पुस्तक-समीक्षा

पुस्तक का नाम :	पृथ्वी किताबें नहीं पढ़ती
संपादक	कुल राजीव पंत
प्रकाशक : संस्थान	4268-बी/3, अंसारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली - 110002
संस्करण :	प्रथम, सन् 2024
मुद्रक :	बी.के.ऑफसेट, दिल्ली
मूल्य :	250/- रूपये
पृष्ठ :	112

यह कविता संग्रह कुल उनसठ (५९) कविताओं पर आधारित है। पुस्तक में संकलित कविताओं 'नदी के पत्थर, तख्तियाँ, मिट्टी, पहाड़ सोचता है' इत्यादि शीर्षकों से स्पष्ट हो जाता है कि पृथिवी को समझने के लिए/पढ़ने के लिए पुस्तकों की आवश्यकता ही नहीं! क्योंकि यह तो स्वयमेव एक खुली किताब है/स्वयं स्फूर्त है। आवश्यकता तो इस बात की है कि इस खुली किताब के मर्म को समझने वाला जिज्ञासु सद्ददय व्यक्ति ही जो प्रकृति स्वरूप पृथिवी के मर्म को सरल भाषा में जन सामान्य तक पहुँचाने में समर्थ हो।

सम्पूर्ण इस कविता संग्रह का सार तो यही प्रतीत होता है कि सुख की कामना पाले हुए प्रत्येक जीव जीवन पर्यन्त संघर्षशील बना रहता है जैसा कि एक प्यासा जीव आनन्द स्वरूप जल की खोज में चलायमान बना रहता है जब तक कि उसे जल न मिल जाय। इन सब बातों के साक्षी सम्पूर्ण कंकड़-पत्थर, पहाड़, पेड़-पौधे झाड़ियाँ आदि माने जा सकते हैं। अत: यह जीवन तो संघर्षमय बना रहेगा। आशा बनी रहनी चाहिए। आशा ही जीवन है, आशा ही वहता जल है जो भिन्न-भिन्न स्रोतों से निकल कर नया-नया स्वाद/आनन्द मनुष्य को देता रहता है। और, इसका साक्षी स्वयं यह धरातल है जो स्वयं एक खुली किताब है जो स्वयं तो नही पढ़ता परन्तु जिसे समझने और समस्त प्राणि जगत की खुशहाली के लिए संरक्षित किया जा सकता है। अत: इस पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि लेखक कुल राजीव पंत जी अपनी लेखनी के द्वारा इस उपक्रम में पूर्ण सफल रहे हैं।

पुस्तक की साजसज्जा अतिमनोहर है और पाठकों के लिए आसानी से क्रय योग्य होने के साथ-साथ आनन्ददायक भी है।

- प्रबंधक-सचिव, प्रज्ञा हिन्दी सेवार्थ संस्थान ट्रस्ट,
'कनक-निकुंज', ठार मुरली नगर, गुँदाऊ, लाइन पार, फिरोजाबाद-283203

संस्थान-समाचार

दान-

डॉ. हरिवंश चंचल चैरिटेवल ट्रस्ट, चण्डीगढ़। 5000/-

हवन-यज्ञ - विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से किया जाता है।

शोक समाचार -

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के विश्वज्योति विभाग के सह-सम्पादक प्रो. (डॉ) प्रेमलाल शर्मा जी के ज्येष्ठभ्राता श्री चण्डीप्रसाद नौटियाल, जी का 81 वर्ष की आयु में थोड़ी अस्वस्थता के पश्चात् दिनांक 23-8-2024 को स्वर्गवास हो गया। इस शोक के अवसर पर संस्थान के सभी कर्मिष्ठों की दु:खी परिवार के साथ हार्दिक समवेदना है। प्रभु से प्रार्थना है कि वह उनकी आत्मा को शांति प्रदान करे तथा दु:खी परिवार को इस दु:ख को सहने की शक्ति प्रदान करे।

धन्याः खलु महात्मानः मुनयः सत्य-सम्मताः।
जितात्मनो महाभागा येषां न स्तः प्रियाप्रिये।।

संसार में वे महापुरुष धन्य हैं, वे मुनि सदृश हैं, सत्यव्रती हैं तथा आत्मसंयमी हैं, जिनके हृदय में किसी के लिए न मैत्रीभाव है और न ही वैरभाव। अर्थात् तपस्वीजन का यही लक्षण है कि वे समदर्शी होते हैं।

अपने पूज्य पति

स्व. डा. हरिवंश शर्मा जी

के जन्मदिन पर

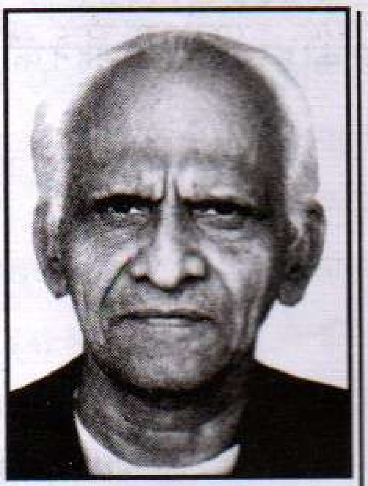

सादर समर्पित

प्रयोजिका :

श्रीमती चञ्चल कुमारी

डॉ. हरिवंश चञ्चल शर्मा धर्मार्थन्यास

1927, सैक्टर 22-बी, चण्डीगढ़

सत्संग मन्दिर

संस्थान यज्ञशाला

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-९-२०२४ को प्रकाशित।